भविष्य की भारत-सन्तानों के
लिए तुम एकाधार में जननी,
सेविका और सखा बन जाओ ।
— स्वामी विवेकानन्द

भारत की निवेदिता

भारत की निवेदिता

रामकृष्ण मिशन इन्स्टीट्यूट ऑफ कल्चर
गोल पार्क : कोलकाता - ७०० ०२९
E-mail : rmic@vsnl.com; *Website* : www.sriramakrishna.org

प्रकाशक का निवेदन

भगिनी निवेदिता ने भारतवर्ष को स्वदेश तथा भारतवासियों को स्वजन के रूप में स्वीकार किया था। भारत के प्रति उनका कितना अवदान है, यह अभी तक हम पूर्ण रूप से समझ नहीं पाये हैं। भविष्य में यदि कभी समझ पाएँगे तो हम आश्चर्यचकित होकर सोचेंगे कि क्या ऐसा चरित्र भी सम्भव है? आज से सौ वर्ष पहले स्वामी विवेकानन्द के आह्वान से वे भारतवर्ष आई थीं तथा उन्होंने इस देश की बालिकाओं को राष्ट्रीय धारा के अनुसार शिक्षा देना आरम्भ किया था। उस ऐतिहासिक घटना की स्मृति में सन् १९९८ को 'भारत की निवेदिता' नामक पुस्तिका का बंगला भाषा में प्रकाशन किया गया था। प्रस्तुत पुस्तिका उसीका हिन्दी रूपान्तर है। इस पुस्तिका के अनुवाद और सम्पादन में स्वामी नित्यज्ञानानन्द और स्वामी उरुक्रमानन्द ने अपना बहुमूल्य योगदान दिया है, जिसके लिए हम उनका हृदय से आभार व्यक्त करते हैं।

आशा करता हूँ कि निवेदिता के आत्मनिवेदन की जो गाथा इस पुस्तक में संकलित हुई है, वह इस देश के सभी श्रेणी के लोगों के मन में, विशेषकर युवक-समाज के बीच, स्वदेशप्रेम एवं स्वधर्मप्रीति जाग्रत करने में सहायता प्रदान करेगा।

कोलकाता ७०००२९ स्वामी प्रभानन्द

विषय सूची

संक्षिप्त जीवनी

निवेदिता का पूर्वनाम था—मार्गरेट एलिज़ाबेथ नोबल। उत्तर आयरलैण्ड के डानगैनन नामक एक छोटे-से शहर में २८ अक्टूबर, १८६७ ई. को उनका जन्म हुआ था। उनके पिता सेमुएल रिचमण्ड नोबल धर्मयाजक थे तथा माता का नाम था—मेरी इसाबेल। केवल दस वर्ष की आयु में उनके पिता की मृत्यु के उपरान्त अभिभावक का दायित्व-पालन किया नाना हैमिल्टन ने। हैमिल्टन आयरलैण्ड के स्वतन्त्रता आन्दोलन के एक विशिष्ट नेता थे।

पिता एवं पूर्वजों के प्रभाव तथा साथ ही नाना के आदर्श की प्रेरणा से मार्गरेट के चरित्र में एक ही साथ सत्यनिष्ठा, धर्म के प्रति अनुराग, देश के प्रति आत्मबोध तथा राजनीति के प्रति निष्ठा का समन्वय दृष्टिगोचर हुआ था।

निवेदिता का अध्ययनकाल लन्दन के एक चर्च के अधीनस्थ आवासीय विद्यालय में कठोर नियम-शृंखला के बीच बीता। तीक्ष्ण मेधावी छात्रा मार्गरेट विद्यालय के पाठ्यक्रम के अतिरिक्त अन्य विषयों का भी काफी अध्ययन किया करती थीं। साहित्य, संगीत, कला, भौतिकशास्त्र, वनस्पतिशास्त्र—सभी विषयों में उनकी समान उत्सुकता थी।

सफलता के साथ स्कूल की शिक्षा समाप्त कर मात्र सत्रह वर्ष की आयु में मार्गरेट ने एक शिक्षिका का जीवन ग्रहण किया। कुछ

दिनों में ही वीम्बलडन में एक विद्यालय खोलकर उन्होंने अपनी पद्धति से शिक्षा देना शुरू किया। अल्प काल में ही एक सुशिक्षिका के रूप में उनकी प्रसिद्धि चारों ओर फैल गयी। इसके साथ ही विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में वे लेख भी लिखती रहीं। शीघ्र ही वे लन्दन के विद्वत्-समाज में एक शक्तिशाली लेखिका के रूप में प्रतिष्ठित हुईं। चर्च के अधीन वे नियमित सेवाकार्य भी करतीं। धर्म के प्रति उनका आकर्षण तो बचपन से था ही। व्यावहारिक जीवन में काफी सफल होने पर भी चर्च के अधीनस्थ प्रथागत धर्म-जीवन से उन्हें शान्ति न मिला। धर्म-सम्बन्धी विभिन्न ग्रन्थों को पढ़कर उन्होंने वास्तविक धर्मजीवन का पथ खोज निकालने की चेष्टा की। परन्तु किसी भी प्रकार शान्ति न प्राप्त कर वे क्रमशः हताश हो गईं।

जीवन की यह अशान्ति सदा के लिए दूर हो गयी भारतीय संन्यासी स्वामी विवेकानन्द के आविर्भाव से। सन् १८९६ ई. के नवम्बर महीने की एक शाम स्वामी विवेकानन्द ने लन्दन के एक कुलीन परिवार के यहाँ वेदान्त-दर्शन की व्याख्या की थी। मार्गरेट ने यहीं उनके प्रथम दर्शन किये थे। वीर संन्यासी की धर्म-व्याख्या एवं व्यक्तित्व से वे मन्त्रमुग्ध हो गईं। इसके बाद स्वामीजी ने लन्दन के विभिन्न स्थानों पर भाषण एवं प्रश्नोत्तर प्रदान किये। मार्गरेट सभी स्थानों पर उपस्थित होकर स्वामीजी की प्रत्येक व्याख्या बड़े ही मनोयोग से सुनतीं। एक के बाद एक प्रश्न पूछकर वे अपना सब संशय दूर करना चाहतीं एवं सदा सर्वदा उन विषयों का चिन्तन किया करतीं। अन्ततोगत्वा उन्हें विश्वास हो गया कि जिस धर्मजीवन की खोज में वे इतने दिनों तक दिग्भ्रान्त

हो रही थीं, उसका ठीक पता बताने में ये भारतीय संन्यासी सर्वसमर्थ हैं।

स्वामीजी ने भी धीरे-धीरे मार्गरेट की सत्यनिष्ठा, दृढ़ता एवं सर्वोपरि मानव के प्रति उनके सहानुभूतिशील मन का परिचय पाया। स्वामीजी पराधीन भारतवर्ष की दुःख-दुर्दशा तथा भारत की साधारण जनता के दुःख से अति कष्ट का अनुभव करते। उनका यह विचार था कि भारत को यदि उन्नति करनी है तो साधारण जनता तथा नारियों की अवस्था में उन्नति करनी होगी। नारियों की उन्नति करने का एकमात्र उपाय है—उनके बीच शिक्षा का विस्तार करना। शिक्षा का विस्तार होने से नारियों में आत्मविश्वास जाग उठेगा एवं फिर वे खुद अपनी समस्याओं का समाधान कर लेने में सक्षम हो जाएँगी। इस कार्य के लिए स्वामीजी ने मार्गरेट को योग्य समझा था। उन्होंने भारतवर्ष की साधारण जनता, विशेषकर नारियों की शिक्षा प्रदान करने हेतु उनका आह्वान किया : 'मेरा दृढ़ विश्वास है कि भारत के कार्य में तुम्हारा एक बड़ा भारी भविष्य है। भारत के लिए, विशेषकर भारत के नारी-समाज के लिए, पुरुष की अपेक्षा नारी की—एक सिंहनी की आवश्यकता है। भारतमाता अभी महीयसी नारी को जन्म नहीं दे पा रही है, इसीलिए दूसरी जाति से उधार लेना पड़ेगा। तुम ठीक वैसी नारी हो, जिसकी हमें आवश्यकता है।' मार्गरेट स्वदेश, स्वजन एवं अपना प्रतिष्ठित जीवन सबकुछ छोड़कर स्वामीजी के भारतगठन के कार्य में योगदान करने हेतु २८ जनवरी १८९८ ई. को भारत आ पहुँचीं। लेकिन उसके पहले तो भारतवर्ष को पहचानना होगा। दिन-पर-दिन स्वामीजी उनके समक्ष भारतवर्ष के

इतिहास, दर्शन, साहित्य, जनजीवन, समाजशास्त्र, प्राचीन एवं आधुनिक महापुरुषों के जीवन की व्याख्या करते रहे। आँखों के सामने जो दुःख-दारिद्र्यपूर्ण, कुसंस्कारबद्ध एवं पराधीन भारतवर्ष दिखाई दे रहा है, उसकी ओट में है आध्यात्किता के ऐश्वर्य से पूर्ण, त्याग तथा तपस्यामय एक महान् भारतवर्ष। शाश्वत भारतवर्ष का वही अनुपम रूप स्वामीजी ने मार्गरेट के समक्ष उपस्थित किया। मार्गरेट ने भारतवर्ष से प्रेम करना शुरू किया, भारतीय जीवन को ग्रहण करने की अप्रतिरोध्य आकांक्षा उनके अन्दर जाग्रत हुई। धीरे-धीरे वे भारतवर्ष के साथ एकाकार हो गयी।

भारत आगमन के कुछ ही दिनों के अन्दर उन्होंने श्रीमाँ सारदादेवी के दर्शन प्राप्त किये। श्रीमाँ ने स्वजन समझकर अति ममतापूर्वक उन्हें ग्रहण किया। मार्गरेट ने श्रीमाँ को प्रेम, पवित्रता, मधुरता, सरलता तथा ज्ञान की प्रतिमूर्ति के रूप में अनुभव किया। उन्होंने यह भी अनुभव किया कि श्रीमाँ एक अनुपम चरित्र की अधिकारिणी हैं तथा विधाता की एक आश्चर्यमय सृष्टि हैं। उनकी प्यारी 'बच्ची' बनकर मार्गरेट ने स्वयं को धन्य माना। इसके कुछ दिनों बाद स्वामीजी ने मार्गरेट को ब्रह्मचर्यव्रत में दीक्षित किया। उनको नाम दिया 'निवेदिता'। उनको उन्होंने आजीवन कठोर संयम अवलम्बन करने तथा बुद्ध की तरह मानवसेवा में आत्मोत्सर्ग करने का निर्देश दिया।

परवर्ती जीवन में निवेदिता का एकमात्र ध्येय था : भारतवर्ष की सेवा करना। स्वामीजी के इस कथन पर वे विश्वास करतीं : भारत के कल्याण में ही जगत् का कल्याण निहित है। भारत का आध्यात्मिक आदर्श सम्पूर्ण जगत् को सदा कल्याण का पथ

दिखाएगा। इसीलिए उनकी भारतसेवा था—सम्पूर्ण मानवजाति की सेवा।

स्वामीजी की इच्छा से बागबाजार (कोलकाता) के बोसपाड़ा लेन में उन्होंने एक महिला विद्यालय स्थापित कर राष्ट्रीय आदर्श के अनुसार नारियों की शिक्षा का कार्य शुरू किया। ४ जुलाई, १९०२ ई. को स्वामीजी ने शरीरत्याग किया। निवेदिता के पास शोक करने का मौका न था क्योंकि उन्हें तो अभी अनेक अपूर्ण कार्य सम्पन्न जो करने थे। भारतवर्ष को सभी तरह से जाग्रत करना होगा। भारतमाता थी उनके गुरुदेव की चिर आराध्य देवी। यहाँ निवास कर निवेदिता ने ब्रिटिश शासन के शोषण को प्रत्यक्ष अनुभव किया था। अंग्रेज जाति के हाथों भारतवासियों के असम्मान एवं अत्याचार ने उन्हें व्यथित एवं उत्तेजित कर दिया। उनको ऐसा महसूस हुआ कि भारतवर्ष की उन्नति में सबसे बड़ी बाधा पराधीनता की ही है। उन्होंने अपने ह्रदय के अन्त:स्थल में यह अनुभव किया कि भारतवासियों की सारी दुर्बलता एवं नैतिक अध:पतन के लिए विदेशी शासन ही जिम्मेदार है। भारतवर्ष को ब्रिटिश शासन से मुक्त करने की प्रबल आकांक्षा के कारण उन्होंने राजनीति से नाता जोड़ लिया। स्वामीजी के निर्देशानुसार राजनीति के साथ रामकृष्ण मठ रामकृष्ण एवं मिशन का किसी भी प्रकार का सम्पर्क वर्जित था। लेकिन निवेदिता की दृष्टि में उस समय भारतवर्ष की स्वाधीनता सबसे अधिक आवश्यक थी। इसीलिए राजनीति न करना उनके लिए किसी भी प्रकार सम्भव नहीं था। अतएव एकमात्र उपाय था रामकृष्ण मिशन के साथ प्रत्यक्ष सम्पर्क तोड़ डालना। ऐसा करना मृत्यु से भी अधिक दु:खदायी होने पर

निवेदिता ने वही किया। परन्तु अन्तरंग सम्पर्क कभी न टूटा। यही कारण है कि संघजननी श्रीमाँ सारदादेवी, मठाध्यक्ष स्वामी ब्रह्मानन्दजी महाराज, उनके गुरुभ्रातागण तथा मठ के सभी संन्यासियों के साथ उनका आजीवन प्रेम एवं श्रद्धा का सम्पर्क था। वे अपना परिचय 'रामकृष्ण-विवेकानन्द की निवेदिता' कहकर दिया करतीं।

स्वामी विवेकानन्द ने जिस महान् भारत का स्वप्न देखा था, उस भारतवर्ष को मूर्तरूप देने के प्रबल उत्साह से निवेदिता बैचेन हो उठी थीं। समग्र भारतवर्ष में राष्ट्रीयता का बोध जाग्रत करने हेतु वे प्राणपण से चेष्टा करने लगीं। निवेदिता के विचार में राष्ट्रीयता का अर्थ है—शिक्षा, साहित्य, विज्ञान, इतिहास, शिल्पकला, लोक-संस्कृति आदि जीवन के सभी क्षेत्रों में स्वदेश-बोध।

स्वामी विवेकानन्द के आदर्श को वहन कर निवेदिता ने भारतवर्ष में भाषण देने का दौरा शुरू किया। अपने प्रेरक भाषणों के द्वारा उन्होंने जनसाधारण में स्वामीजी के आदर्शों को समझाना शुरू किया। सभी प्रकार के सामाजिक एवं धार्मिक भेदभाव को भूल एकबद्ध होकर अपनी मातृभूति की सेवा के लिए अग्रसर होने का उन्होंने आह्वान किया। निःस्वार्थता, त्याग एवं तपस्या की प्रतिमूर्ति निवेदिता का आन्तरिक निवेदन जनसाधारण के हृदय को स्पर्श करता। कई लोगों में स्वदेशबोध जाग्रत हो उठा। वे विशेषकर छात्रों एवं नवयुवकों के साथ अधिक सम्पर्क करतीं। छात्रों को वे सत्, परिश्रमी एवं निर्भीक होने का उपदेश देतीं। वीर संन्यासी विवेकानन्द की मातृभूमि के युवकों को वे शारीरिक एवं मानसिक रूप से वीर होने को कहतीं तथा सर्वोपरि वे उनको भारतमाता को हृदय से प्रेम करने एवं पूजा करने को कहतीं।

१९०५ ई. में कर्जन के बंगाल विभाजन-नियम को केन्द्र करके भारतवर्ष में, विशेषकर बंगाल में स्वदेशी आन्दोलन का सूत्रपात हुआ। पहली बार भारतवासियों ने खुलेआम ब्रिटिश शासन का विरोध करना शुरू किया। निवेदिता इस आन्दोलन के नेताओं एवं कार्यकर्ताओं की सभी प्रकार की सहायता करने लगीं। ब्रिटिश सरकार ने इस आन्दोलन को कुचलने की प्रबल कोशिश की। पुलिस द्वारा अत्याचार, अपमान, गिरफ्तार, देश-निकाला तथा राष्ट्रीय समाचार-पत्रों के विरुद्ध कई प्रकार की व्यवस्था ग्रहण कर निर्ममतापूर्वक इस आन्दोलन को बन्द करने की कोशिश की गयी। सरकार के द्वारा किये जानेवाले अत्याचार जब सीमा को पार कर गये तब जनसाधारण के विक्षोभ ने गुप्त क्रान्ति का रूप धारण किया। गुप्त हत्या तथा कई प्रकार के आतंकवादी कार्यकलापों में देशप्रेमी युवकगण संलग्न हो गये। क्रान्तिकारी आन्दोलन के प्रधान नेता श्रीअरविंद तथा दूसरे क्रान्तिकारी नेताओं एवं युवकों के साथ निवेदिता का घनिष्ठ सम्पर्क था। भारतमाता की सेवा में समर्पित इन स्वार्थरहित लोगों की राजरोष से रक्षा करने में वे सदा तत्पर रहतीं। अपने मित्र के द्वारा सरकार के गुप्त समाचार लेकर क्रान्तिकारियों को पहले से ही सावधान कर देतीं। उन्हें कई प्रकार की सलाह देकर सहायता करतीं। साथ ही कोशिश करतीं जिससे भारतवर्ष में ब्रिटिश सरकार के जन-विरोधी कार्यों का प्रचार इंग्लैण्ड में भी हो एवं उसके विरुद्ध जनमत तैयार हो।

भारतवर्ष के प्रधान राजनैतिक नेताओं में प्रायः सभी के साथ वे सम्पर्क बनाये रखतीं। उनकी पहली कोशिश थी कि भारतवासी आपस में ही विभिन्न दलों में न बँटकर एक होकर विदेशी शासन

का विरोध करें। ब्रिटिश शासनाधीन भारत में राजनीति करने की मुसीबत से वे अवगत थीं। इसीलिए अपने-आपको अप्रत्यक्ष रखकर ही वे राजनैतिक कार्यक्रम किया करतीं। राजनैतिक आन्दोलन की नेत्री की भूमिका ग्रहण करने की उनकी इच्छा नहीं थी। बल्कि विवेकानन्द की इच्छा के अनुसार जिन्होंने भारतभूमि में जन्मग्रहण किया है, उनके लिए ही यह कार्य निर्दिष्ट है, ऐसा वे मानती थीं।

श्रीरामकृष्ण एवं स्वामी विवेकानन्द की जन्मभूमि भारतवर्ष को निवेदिता स्वदेश समझतीं। भारतवासियों की विपत्ति के समय वे प्राणपण से सेवा करतीं। १८९९ ई. में कलकत्ता में प्लेग रोग ने जब महामारी का रूप धारण किया तो स्वामीजी के निर्देशानुसार निवेदिता रामकृष्ण मिशन के संन्यासियों को साथ लेकर सेवाकार्य में संलग्न हो गयीं। उनके नेतृत्व में रोगियों की सेवा शुरू हुई। साथ ही रोग के रोकथाम की व्यवस्था के रूप में साधारण लोगों के निवास स्थानों के कुड़े-कचरे की सफाई का कार्य भी चला। निवेदिता खुद अपने हाथ में झाड़ू लेकर कचरा साफ करतीं तथा रोगियों की सेवा करतीं। इससे उन्हें भी प्लेग हो सकता है और प्लेग का अर्थ अवश्यम्भावी मृत्यु—इस बात का तनिक भी ख्याल न रहता। निवेदिता का दृष्टान्त लेकर स्थानीय कई युवकों ने भी उनके साथ सेवाकार्य में योगदान किया था। बागबाजार के बोसपाड़ा में रहते समय निवेदिता अपने पड़ोसी साधारण लोगों के सुख-दुःख के समय सदा उनके साथ रहतीं। उनकी आन्तरिकता से पड़ोसी भी उन्हें अपना स्वजन समझते, यद्यपि छुआछूत आदि सामाजिक रीति-रिवाजों को मानकर भी चलना पड़ता।

श्रीरामकृष्ण-भक्तमण्डली में 'गोपाल की माँ' का विशेष स्थान

था। ब्राह्मण परिवार की वे एक निष्ठावान विधवा थीं। आजीवन निष्ठा के साथ उन्होंने बालगोपाल की उपासना की थी। श्रीरामकृष्ण के भीतर उन्होंने बालगोपाल के दर्शन किये थे। उसके बाद से श्रीरामकृष्ण को ही वे 'गोपाल' कहकर पुकारा करतीं। श्रीरामकृष्ण एवं माँ सारदादेवी भी दोनों ही उन्हें माँ की तरह श्रद्धा-भक्ति करते। बुढ़ापे में 'गोपाल की माँ' जब खूब बीमार थीं, तब निवेदिता ने उन्हें अपने घर पर रखकर अन्तिम दिन तक उनकी सेवा-शुश्रूषा की थी। जीवनभर जो महान् आचारी थीं, वे 'गोपाल की माँ' भी निवेदिता की सेवा ग्रहण करने में किसी प्रकार की दुविधा में न पड़ीं। प्रेम एवं पवित्रता के प्रबल प्रवाह में उस समय सामाजिक आचार-विचार की सीमा न जाने कहाँ टूटकर बह गयी!

निवेदिता के प्रेम एवं सेवा की कोई तुलना न थी। पूर्वी बंगाल में अकाल और बाद का प्रकोप होने पर संगी-साथियों को लेकर वे सेवाकार्य हेतु वहाँ उपस्थित हो गयीं। पानी-कीचड़ को पारकर लोगों के घर-घर जाकर वे दुर्दशाग्रस्त लोगों की सेवा करने लगीं। दु:खी लोग भी करुणामयी निवेदिता को अपना परम आत्मीय समझते। उनकी सेवा वे नि:संकोच रूप से ग्रहण करते।

स्वामीजी के आदर्शानुसार भारतवर्ष में वैज्ञानिक शिक्षण एवं प्रयोग का महत्वपूर्ण स्थान है। उनके विचारानुसार वेदान्त एवं वैज्ञानिक शिक्षा के समन्वय से ही आदर्श भारतवर्ष का निर्माण होगा। वेदान्त मानव के अन्तर्जीवन को सुन्दर बनायेगा तथा विज्ञान बहिर्जीवन को। स्वामीजी के समय में भारतीय वैज्ञानिक जगदीशचन्द्र बसु की अपनी मौलिक गवेषणाओं द्वारा सारे विश्व में

हलचल मची ही थी। स्वामीजी जगदीशचन्द्र बसु के प्रति विशेष गर्व का अनुभव करते। लेकिन पराधीन भारतवर्ष में जगदीशचन्द्र को बहुत-सी विपरीत परिस्थिति में कार्य करना पड़ता। पराधीन देश के वैज्ञानिक को तत्कालीन प्रसिद्ध वैज्ञानिकगण अपने समान मर्यादा देने के लिए एकदम राजी नहीं थे। विदेशी सरकार भी कोई सहायता करना नहीं चाहती थी। कई प्रकार की दुश्चिन्ताओं एवं आर्थिक अभाव के बीच उन्हें कार्य करना पड़ता। भारतवर्ष के इस महान् वैज्ञानिक की सहायता करने हेतु निवेदिता मातृस्नेह लेकर आगे बढ़ आयी थीं। सरकारी स्तर पर अपने प्रभाव को काम में लगाकर वे उनके लिए कई प्रकार की सुविधाओं की व्यवस्था कर देतीं। उनके आविष्कार जिससे विश्व में उचित मर्यादा के साथ अपना स्थान प्राप्त कर सके, इसके लिए वे पत्र-पत्रिकाओं में प्रचार किया करतीं। वैज्ञानिक गवेषणा के लिए भारी धन की आवश्यकता होती। निवेदिता कई प्रकार से धन की व्यवस्था करतीं। विदेश में अस्वस्थ हो जाने पर भी निवेदिता उनकी सेवा किया करतीं। वे उन्हें भारत की राष्ट्रीय सम्पत्ति समझतीं। उनको पुत्र के समान प्यार करतीं तथा 'बच्चा' कहकर पुकारतीं। निवेदिता के उत्साह, प्रेरणा तथा सक्रिय सहायता के बिना जगदीश बसु के लिए वैज्ञानिक गवेषणा का कार्य जारी रखना अति कठिन था। जगदीश बसु एवं उनके परिवार के लोग निवेदिता के प्रति असीम कृतज्ञ थे। वे बसु परिवार का ही एक सदस्य हो गयी थीं।

सिर्फ विज्ञान शिक्षा के क्षेत्र में ही नहीं, राष्ट्रीय धारा के अनुरूप शिल्पान्दोलन खड़ा करने के पीछे भी उनकी महान्

भूमिका थी। हैमेल तथा अवनीन्द्रनाथ ठाकुर के माध्यम से राष्ट्रीय धारानुरूप जिस शिल्पान्दोलन का शुभारम्भ हुआ था तथा शिल्पाचार्य नन्दलाल बसु जिसकी पराकाष्ठा थी, उस आन्दोलन के पीछे भी निवेदिता का अपरिसीम अवदान था। उसी तरह राष्ट्रीय धारा के अनुसार इतिहास लिखने के लिए रमेशचन्द्र दत्त तथा यदुनाथ सरकार जैसे प्रसिद्ध इतिहासकारों को भी उन्होंने प्रेरणा दी थी।

निवेदिता जैसे एक असाधारण वक्ता थीं, वैसे ही एक शक्तिशाली लेखिका भी थीं। भारतवर्ष आने के पहले केवल ३० वर्ष की अल्पायु में ही लन्दन के शिक्षित समाज में वे एक अच्छी लेखिका के रूप में प्रसिद्ध हो चुकी थीं। भारतवर्ष आकर जब उन्होंने स्वामीजी के आदर्शानुसार यहाँ राष्ट्रीयबोध जाग्रत करने हेतु अपने-आप को समर्पित किया तब उन्होंने निश्चय किया कि इस सम्बन्ध में लेखनी ही उनकी मूल शक्ति होगी। तदनुसार मॉडर्न रिव्यूव, स्टेट्समैन, अमृतबाजार पत्रिका, डॉन, प्रबुद्धभारत, बालभारती आदि देशी एवं कई विदेशी पत्रिकाओं में वे नियमित रूप से धर्म, साहित्य, राजनीति, समाज, विज्ञान, शिल्प इत्यादि विभिन्न विषयों पर लेख लिखतीं। उन्होंने कई पुस्तकों का प्रणयन भी किया है। उनमें विशेष उल्लेखनीय हैं : Kali the Mother, Web of Indian life, cradle tales of Hinduism, The Master as I saw Him. बोसपाड़ा (कलकत्ता) स्थित उनके निवासस्थान पर उस समय के कई विशिष्ट व्यक्ति आते। उनकी बहुमुखी प्रतिभा तथा विविध विषयों में उनके पाण्डित्य से सभी मुग्ध हो जाते।

इन सारे कार्यों में व्यस्त रहने के बावजूद स्वामीजी की इच्छा से प्रतिष्ठित तथा श्रीमाँ के आशीर्वाद से धन्य बागबाजार स्थित

विद्यालय उनके मन-प्राण पर अधिकार किये रहता। वे विश्वास करतीं कि इस विद्यालय पर स्वामीजी की दृष्टि तथा श्रीमाँ का आशीर्वाद सदा-सर्वदा है। उनका दृढ़ विश्वास था कि भावी शिक्षित हिन्दू नारियों के लिए श्रीमाँ का आशीर्वाद सबसे अधिक मूल्यवान है। वे विश्वास करतीं कि उस विद्यालय की छात्राओं में से ही भविष्य में गार्गी एवं मैत्रेयी का आविर्भाव भारतवर्ष में होगा।

निवेदिता के समय में भारत का समाज अति प्राचीनपन्थी था। अभिभावकगण अपने घर की लड़कियों की पढ़ाई के पक्ष में नहीं थे। बागबाजार के हर मुहल्ले में घूम-घूमकर निवेदिता छात्राएँ खोज लातीं। उन लड़कियों को इतिहास, भूगोल, प्राकृतिक विज्ञान तथा थोड़ा-बहुत अंग्रेजी सिखातीं। पढ़ाई-लिखाई के साथ-साथ सिलाई, चित्रांकन, हस्तशिल्प आदि सिखातीं। व्यायाम के द्वारा शरीर स्वस्थ रखने में भी उत्साह देतीं। सर्वोपरि उनके अन्तर्निहित स्वाभाविक धर्म-चेतना को और जाग्रत कर देतीं तथा भारतीय संस्कृति के साथ परिचय करा देतीं। छोटी-छोटी बालिकाओं के साथ विवाहित एवं विधवा महिलाएँ भी जिससे दोपहर में कार्य से निवृत्त हो पढ़ाई तथा सिलाई आदि कर सके वे इसकी भी व्यवस्था कर देतीं। कुछ शिक्षित महिलाओं को शिक्षिका के रूप में तैयार करतीं।

शाम के समय कभी-कभी मुहल्ले की महिलाओं को आमन्त्रित कर सभा आयोजित करतीं। आंगन में एक चौकी के ऊपर बैठकर स्वामी सारदानन्दजी चण्डीपाठ करते। जगन्माता का नामगान एवं लीलाकीर्तन करते। निवेदिता एवं क्रिस्टीन छोटी बालिकाओं को लेकर प्रांगण की एक ओर बैठतीं, महिलाएँ पर्दे के पीछे बैठतीं।

विद्यालय की बालिकाओं को वे दक्षिणेश्वर, बेलुड़ मठ एवं श्रीमाँ के पास उद्बोधन ले जाया करतीं। उन्हें चिड़ियाखाना, अजायबघर आदि दिखलाने भी वे ले जाया करतीं। विद्यालय की बालिकाओं को बहुत ही प्यार करतीं तथा उन्हें खिलाना पसन्द करतीं। उन्हें खिलाने की इच्छा होने पर शालपत्र के दोने में फल-मिठाई सजाकर देतीं। खाना हो जाने पर खुद दोने को एक टोकरी में फेंकने की व्यवस्था करतीं। वे अपनी प्रिय बालिकाओं की सेवा इस प्रकार करती थीं।

आर्थिक अभाव सदा उनके साथ सदा ही बना रहता। विद्यालय का खर्च चलाने के लिए अपने लेखन-कार्य से प्राप्त समस्त आय का व्यय करतीं। भाषण आदि कर तथा देश-विदेश में आवेदन कर धन-संग्रह करतीं। अति साधारण रूप से जीवन निर्वाह करने के लिए जितने खर्च की आवश्यकता होती है, उतना भी वे अपने लिए नहीं रखतीं। ग्रीष्म-प्रधान देश भारत के गर्मी के दिनों उन्हें अति कष्ट होता।

उनका शरीर इतना कष्ट सहन नहीं कर सका। बहुत ही कम आयु में उनका स्वास्थ्य टूट गया। बारम्बार बीमार पड़ने लगीं। १९११ ई. की पूजा की छुट्टियों में बसु परिवार के साथ दार्जिलिंग हिमालय भ्रमण करने गयीं ताकि स्वास्थ्य अच्छा हो सके। किन्तु वहाँ जाकर और बीमार पड़कर शय्याशायी हो गयीं। अन्त में १३ अक्तूबर को सुबह केवल ४४ वर्ष की अल्पायु में ही उन्होंने अपना शरीर त्याग दिया। रामकृष्ण-विवेकानन्द की निवेदिता रामकृष्णलोक को चली गयीं।

अपमानित एवं पददलित पराधीन भारतवर्ष को उनकी तरह

और कोई विदेशी अपना बनाकर प्रेम नहीं कर सका। भारत के धर्म एवं संस्कृति को लेकर इतना गर्वबोध, भारत में राष्ट्रीय-चेतना जगाने के लिए ऐसा प्राणपण प्रयत्न अन्य किसी भी विदेशी के भीतर हम आज तक नहीं देख पाए। भारतवर्ष से प्रेम कर, अपने आप को पूर्ण रूप से भारतवर्ष की सेवा में निवेदित कर गुरुप्रदत्त 'निवेदिता' नाम को उन्होंने सार्थक किया।

निवेदिता के जीवन की घटनावली

सुदूर आयरलैण्ड के एक छोटे-से शहर में एक पादरी की भक्तिमति स्त्री अपनी प्रथम सन्तान के जन्म से पहले इस भय से व्याकुल थीं कि सन्तान का जन्म निर्विघ्न होगा तो? ईश्वर के निकट उन्होंने निवेदन किया था, सन्तान का जन्म यदि अच्छी तरह हुआ तो ईश्वर के पादपद्मों में ही उसे समर्पित करूँगी। माता के गर्भ में ही जो शिशु ईश्वर के पादपद्मों में समर्पित हुआ था, परवर्ती जीवन में वे ही हुईं सर्वत्यागी संन्यासी स्वामी विवेकानन्द की मानसपुत्री भगिनी निवेदिता।

* * * *

शैशवकाल से ही मार्गरेट अति आत्मविश्वासी एवं साहसी थीं। शैशव में ही पितृहीन होने के कारण कम उम्र से ही उन्हें कई गुरुत्वपूर्ण सांसारिक दायित्वों का पालन करना पड़ता था। मार्गरेट की उम्र उस समय केवल १३ वर्ष की थी। माँ, भाई एवं बहन के साथ रहती थीं। पारिवारिक व्ययभार कम करने हेतु उनके तीन वर्षीय छोटे भाई को नाना के पास आयरलैण्ड भेजने की जरूरत पड़ी। कौन जाएगा? पारिवारिक कर्तव्यों को छोड़कर माँ जा नहीं सकती थीं। अतएव किशोरी मार्गरेट के ऊपर ही यह दायित्व आ पड़ा। स्थल एवं समुद्र मार्ग से एक नादान शिशु को ले जाना बड़ों के लिए भी आसान कार्य नहीं था। लेकिन १३ वर्षीया

स्कूल-बालिका ने थोड़ा भी न घबड़ाकर अपने भाई को फुसला-फुसलाकर इंतने दूर पथ का अतिक्रम किया तथा उसे सुरक्षित आयरलैण्ड पहुँचा दिया। कम उम्र में ही महत्कार्य करने हेतु जो लोग पूर्वनिर्दिष्ट होते हैं, उन्हें विधाता मानो इसी प्रकार परीक्षा में डालकर शक्तिशाली बनाते हैं। मात्र इस तरह सत्रह वर्ष की उम्र में स्कूलजीवन समाप्त कर मार्गरेट ने शिक्षिका का जीवन चयन कर लिया। कुछ ही दिनों में उन्होंने लन्दन शहर में एक शिक्षा-विशारद एवं ओजस्वी लेखिका के रूप में अपने-आप को प्रतिष्ठित कर लिया।

* * * *

सन् १८९५ ई. के नवम्बर का महीना था। अमेरिका में वेदान्त का प्रचारकर स्वामी विवेकानन्द केवल दो महीने पहले लन्दन पहुँचे थे। एक दिन अपराह्न में वेस्ट एण्ड की एक कुलीन महिला के घर पर स्वामीजी की वक्तृता का आयोजन किया गया था। मार्गरेट भी वहाँ आमन्त्रित होकर आयी थीं। केवल १५-१६ श्रोता थे जो स्वामीजी को घेरकर बैठे थे। स्वामीजी उनकी ओर मुँह करके बोल रहे थे। उज्ज्वलकान्ति भारतीय संन्यासी के व्यक्तित्वपूर्ण किन्तु शिशु की तरह कमनीय मुखाकृति के प्रथम दर्शन से ही मार्गरेट मुग्ध हो गयीं। स्वामीजी ने अपने गम्भीर सुललित कण्ठ से वेदान्त के अद्वैततत्त्व की व्याख्या की। गीता के संस्कृत श्लोकों की आवृत्ति एवं अनुवाद कर समझाने लगे। मार्गरेट ने इस बात पर गौर किया कि वे 'विश्वास' के बदले 'उपलब्धि' शब्द के ऊपर बारम्बार जोर दे रहे हैं तथा बीच-बीच में 'शिव-शिव' का उच्चारण कर रहे हैं।

स्वामीजी की बातों को मार्गरेट उस दिन पूरी तरह से समझ नहीं पायी थीं, लेकिन इतना समझ पायी थीं कि ये बातें उनके द्वारा पूर्व में सुनी गयी धर्मविषयक सारी बातों से पृथक् थीं। उनके चिन्तनशील मन में तूफान आ गया। हिन्दू संन्यासी की बातों पर उन्होंने चिन्तन करना शुरू कर दिया। उस दिन वह समझ नहीं पायीं कि यह घटना उनके जीवन में आमूलचूल परिवर्तन लाएगी। लन्दन के शिक्षित-सम्प्रदाय में प्रतिष्ठित मार्गरेट और कुछ ही दिनों में हो जाएँगी भारतसेविका ब्रह्मचारिणी निवेदिता।

* * * *

स्वामीजी के आह्वान पर १८९९ ई. के २८ जनवरी को मार्गरेट कलकत्ता आ पहुँचीं। २८ फरवरी को वे पहली बार दक्षिणेश्वर तीर्थ गयीं। उस दिन दक्षिणेश्वर में श्रीरामकृष्णदेव का जन्मोत्सव हो रहा था। वह विदेशी ईसाई धर्मावलम्बी महिला थीं। मन्दिर में उनके प्रवेश की अनुमति नहीं थी। चाँदनी घाट पर उतरकर वे अपने संगियों के साथ इधर-उधर घूम-घूमकर देखने लगीं। गंगा के किनारे पक्के घाट पर बैठीं। साधु-संन्यासियों एवं भक्तों के आगमन से सदा उत्सवमय गंगातटवर्ती पुण्यतीर्थ दक्षिणेश्वर—युगावतार श्रीरामकृष्णदेव की साधनभूमि। विदेशी नारियों के प्रवेशाधिकार को लेकर लोगों के बीच कई प्रकार के वादानुवाद चल रहे थे। अधिकांश पक्ष में थे तथा कोई-कोई विपक्ष में। अचानक श्रीरामकृष्ण के कमरे का दरवाजा खुल गया। विदेशी नारियों को भीतर आने को कहा गया। मार्गरेट ने देखा कि मनुष्य के स्वाभाविक प्रेम एवं सहानुभूति

के सामने विधि-निषेध का बेड़ा किस तरह टूट जाता है।

* * * *

११ मार्च, १८९८ ई.। स्टार थियेटर में एक सभा का आयोजन कर स्वामीजी ने जनसाधारण के साथ मार्गरेट का परिचय करवा दिया। स्वामीजी ने मार्गरेट का परिचय "इंग्लैण्ड के द्वारा भारतवर्ष को दिया गया एक उपहार" के रूप में दिया। 'भारतीय अध्यात्म-चिन्तन' विषय पर वक्तृता करने के लिए उन्होंने मार्गरेट का आह्वान किया। अपने अभूतपूर्व भाषण में उन्होंने पाश्चात्य जगत् में स्वामीजी की धर्मव्याख्या के प्रभाव का वर्णन किया। नव-प्रतिष्ठित रामकृष्ण मिशन के उद्देश्य की व्याख्या की। सर्वोपरि भारतसेवा की अपनी इच्छा व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा, 'आप लोग एक ऐसे रक्षणशील जाति हैं जो दीर्घकाल से सारे जगत् के लिए आध्यात्मिक सम्पदा की रक्षा सयत्न करते आ रहे हैं' तथा इसी कारण से वे स्वदेश एवं स्वजनों छोड़कर भारत की सेवा करने हेतु इस देश में आयी हैं। उनकी इस वक्तृता से सभी मुग्ध हो गये। स्वामीजी भी अति आनन्दित हुए। बातचीत के क्रम में उन्होंने कहा, 'मार्गरेट महाप्राण हैं, उदार हृदय एवं पवित्र हैं। अपने प्राण वह भारत की सेवा में देने आयी हैं, गुरुगिरी करने नहीं।'

* * * *

१७ मार्च १८९८ ई. मार्गरेट के जीवन का परम पुण्य दिन था। इस दिन को ही उन्होंने अपने जीवन के सर्वश्रेष्ठ दिवस (day of days) के रूप में अपनी डायरी में चिह्नित किया है।

इसी दिन उन्होंने श्रीमाँ सारदादेवी के दर्शन प्राप्त किये। स्वामीजी की दो विदेशी शिष्याओं के साथ मार्गरेट श्री श्रीमाँ के दर्शन प्राप्त करने गयीं। प्रथम साक्षात्कार में ही सामाजिक सभी रूढ़िवादिता की सीमा को पारकर श्री श्रीमाँ ने श्वेतांगिनी मार्गरेट को अपनी पुत्री के रूप में ग्रहण किया। मार्गरेट हो गयीं श्री श्रीमाँ की प्यारी बेटी। मार्गरेट को ऐसा लगा : श्री श्रीमाँ ने जब उसे अपनी बेटी के रूप में ग्रहण किया, तब वास्तव में वे उसी दिन से भारतीय समाज में अन्तर्भुक्त हो गयी हैं।

* * * *

२५ मार्च, १८९८ ई. को स्वामीजी ने मार्गरेट को दीक्षा प्रदान की। बेलुड़ मठ के मन्दिर में मार्गरेट के द्वारा उन्होंने सर्वप्रथम शिवपूजा करवायी। उसके बाद भगवान बुद्ध के चरणों में पुष्पाञ्जलि दिलवायी तथा आवेगपूर्ण शब्दों में कहा, "जाओ और उस महान् व्यक्ति का अनुसरण करो जिसने ५०० बार जन्म लेकर अपना जीवन लोक-कल्याण के लिए समर्पित किया और फिर बुद्धत्व प्राप्त किया।" मार्गरेट को ऐसा लगा कि स्वामीजी के निकट ज्ञानप्राप्ति के लिए जो लोग आये हैं एवं भविष्य में जो लोग आयेंगे, उन सबों के प्रति उनके माध्यम से मानो स्वामीजी ने अपना यह चिरकालीन निर्देश प्रदान किया है। स्वामीजी ने मार्गरेट का नाम रखा—निवेदिता। निवेदिता ने अपनी डायरी में लिखा : यह उनके जीवन की सबसे अधिक आनन्दमय सुबह थी।

* * * *

इंग्लैण्ड निवासकाल में अधिकांश अंग्रेजों की भाँति निवेदिता की भी धारणा थी कि अंग्रेजों का शासन भारतवर्ष के लिए कल्याणकर है। वह सोचतीं कि इंग्लैण्ड एवं भारतवर्ष परस्पर प्रेम कर सकेंगे और उसीसे शान्ति आयेगी। वे जब भारत की सेवा के उद्देश्य से भारतवर्ष आयीं तो प्रारम्भिक कुछ दिनों में तो उनका यही मनोभाव था। दीक्षा के दूसरे दिन स्वामीजी ने अचानक निवेदिता से पूछा, "तुम किस देश की हो?" निवेदिता ने गर्व के साथ ब्रिटिश झण्डे के प्रति अपना आनुगत्य प्रकट किया। स्वामीजी ने समझा कि निवेदिता के पाश्चात्य संस्कार एवं धारणा कितनी बद्धमूल हैं। उन्होंने निवेदिता को शिक्षा प्रदान करना शुरू किया। भारतसेवा के लिए उन्हें उपयुक्त करने हेतु स्वामीजी भारत के चिरन्तन महिमामय स्वरूप को उनके मन में दृढ़ रूप से अंकित करने लगे एवं उसी के साथ उनके अन्दर बद्धमूल पाश्चात्य संस्कारों को उखाड़ फेंकने लगे। फिर भारतवर्ष की दुर्बलता कहाँ है, कौन-कौन-सी चीज़ भारतवर्ष को पाश्चात्यवासियों से सीखना होगा—यह भी समझा दिया। निरपेक्ष एवं निर्मल विचार-बुद्धि की सहायता से भारतवर्ष में अंग्रेज शासन के कुपरिणामों को निवेदिता समझ पायीं। उनके अन्दर तीव्र अंग्रेज-विद्वेष जाग उठा तथा उसी के साथ जाग उठा भारतवर्ष के प्रति श्रद्धापरिपूर्ण प्रेम।

* * * *

निवेदिता की यह तैयारी पूरी नहीं हो पायी थी कि एक दिन उन्होंने बातचीत के क्रम में स्वामीजी से कहा, "लन्दन शहर को

सौन्दर्यशाली बनाने की आवश्यकता है।'' स्वामीजी ने तीव्रस्वर में उत्तर दिया, ''और तुम लोग दूसरे शहरों को श्मशान बना रही हो?'' उसी क्षण निवेदिता उस उक्ति का अर्थ समझ नहीं पायीं तथा थोड़ा आहत भी शायद हुई थीं। लेकिन बहुत समय तक यह स्वर उनके कानों में सुनाई देता। परवर्ती समय में शासन करने के नाम पर अंग्रेजों द्वारा भारत-शोषण को प्रत्यक्ष करके उन्होंने स्वामीजी की उस उक्ति का अर्थ पूरी तरह समझ लिया था।

* * * *

स्वामीजी ने निवेदिता को इस देश की नारियों में शिक्षा का विस्तार करने हेतु भारतवर्ष लाया था। निवेदिता जब बागबाज़ार (कलकत्ता) के १६ नं. बोसपाड़ा लेन में बालिका विद्यालय खोलने के लिए तत्पर हुईं तो उस विषय में स्वामीजी का उत्साह असीम था। बलराम बसु के घर पर निवेदिता द्वारा विद्यालय खोलने के विषय पर एक सभा का आयोजन किया गया। वहाँ श्रीरामकृष्ण के गृही-भक्तों में उपस्थित थे—मास्टर महाशय (वचनामृतकार श्री म), सुरेश दत्त, हरमोहनबाबू आदि। निवेदिता ने अपने भाषण में अपने विद्यालय की योजनाओं के बारे में सबों को अवगत किया तथा उनसे अनुरोध किया वे अपनी बालिकाओं को निवेदिता विद्यालय में पढ़ने के लिए भेजें। स्वामीजी कब आकर सबके पीछे बैठ गये थे यह किसी को पता नहीं चला था। अचानक देखा—वे हँसते-हँसते सबको धक्का दे रहे हैं और कह रहे हैं, ''उठो, उठो। केवल बालिकाओं के पिता होने से ही नहीं चलेगा। राष्ट्रीय भाव से उनकी शिक्षा-दीक्षा की व्यवस्था में तुम

सबको सहयोग करना होगा। उठकर आवेदन का उत्तर दो। बोलो, हाँ, हम लोग राजी हैं। हम लोग तुम्हें अपनी बालिकाएँ देंगे।" कोई भी साहस करके कुछ बोल नहीं रहे थे। अन्त में स्वामीजी ने हरमोहनबाबू से जोरपूर्वक कहा, "तुमको देना ही होगा।" एवं उनकी तरफ से खुद कह दिया, "Well Miss noble, this gentlman offers his girls to you." निवेदिता स्वामीजी को देखकर और उनकी उत्साह वाणी सुनकर अत्यन्त प्रसन्न हुईं। आनन्दपूर्वक ताली बजाकर नाचने लगीं—मानो एक छोटी बालिको हो!

* * * *

१३ नवम्बर, १८९८ ई.। श्री श्रीमाँ आयी हैं निवेदिता विद्यालय का शुभारम्भ करने। श्रीरामकृष्णदेव की पूजा करके श्री श्रीमाँ ने निवेदिता विद्यालय की प्रतिष्ठा की। उसके बाद बोलीं, "मैं आशीर्वाद करती हूँ इस विद्यालय के ऊपर जगन्माता का आशीर्वाद वर्षित हो एवं यहाँ से शिक्षित बालिकाएँ आदर्श बालिका बन सकें।" आनन्दविभोर होकर निवेदिता लिखती हैं : भावी शिक्षित हिन्दू नारियों के लिए श्री श्रीमाँ के आशीर्वाद से बढ़कर और कोई शुभ लक्षण की कल्पना मैं नहीं कर पा रही हूँ।

* * * *

श्री श्रीमाँ का स्थान था निवेदिता के हृदय-मन्दिर में। श्री श्रीमाँ के आदर, स्नेह एवं स्पर्श से माँ की लाड़ली बेटी निवेदिता आनन्द से मानो फूल उठतीं। एक दिन निवेदिता माँ के पास

आयीं एवं उन्हें प्रणाम कर बैठीं। माँ ने उनसे कुशलादि पूछा तथा ऊन का बना एक छोटा-सा पंखा उनके हाथों में देते हुए कहा, "मैंने तुम्हारे लिये यह बनाया है।" निवेदिता पंखा पाकर आनन्द से आत्मविभोर हो गयीं। पंखे को एकबार सिर से लगाती हैं तो एकबार हृदय से तथा कहती हैं, "कैसा सुन्दर ! कितना चमत्कार !" फिर सभी को दिखाती हैं और कहती हैं, "कैसा सुन्दर ! माँ ने बनाया है, देखो !" माँ ने कहा, "एक छोटी-सी वस्तु पाकर उसका कैसा आनन्द ! आहा, कैसा सरल विश्वास ! मानो साक्षात् देवी ! नरेन (स्वामी विवेकानन्द) के प्रति कैसी भक्ति है ! नरेन ने इस देश में जन्म ग्रहण किया है, इसलिए सर्वस्व त्यागकर प्राणपण से उसका कार्य कर रही है। कैसी गुरुभक्ति ! इस देश के प्रति भी कैसा प्रेम !"

* * * *

श्री श्रीमाँ एक दिन निवेदिता विद्यालय देखने आयेंगी, यह निश्चय किया। खबर मिलने पर निवेदिता के आनन्द की सीमा नहीं रही। विद्यालय के सभी कमरों की झाड़-पोंछकर सफाई की गयी। फूल, पत्तों से कमरों की सजावट हुई। बालिकाओं में कौन क्या उपहार उन्हें देंगी, कविता-गीत इत्यादि क्या-क्या सुनायेंगी, उनकी अभ्यर्थना कैसे की जायेगी, कहाँ बैठकर वे विद्यालय की बालिकाओं के साथ बात करेंगा—इन सब बातों को लेकर निवेदिता अस्थिर हो उठीं। फिर जिस दिन श्री श्रीमाँ वहाँ जायेंगी, उस दिन सुबह से ही वे मानो आनन्द से आत्मविभोर हो रही हैं। सबकुछ ठीक-ठाक हो रहा है या नहीं—इधर-उधर, दौड़-दौड़कर देख रही

हैं। शिशु की तरह अकारण हँस रही हैं तथा आनन्द से अधीर होकर विद्यालय की छात्राओं एवं शिक्षिकाओं, यहाँ तक कि सेविकाओं को भी, गर्दन पकड़कर प्यार कर रही हैं। प्रखर व्यक्तित्वशाली निवेदिता मानो एक छोटी-सी बालिका बन गयी हों।

* * * *

श्री श्रीमाँ की जिस छबि की आज घर-घर में पूजा होती है, वह निवेदिता के घर पर ही खींची गयी थी। ओलि बुल एवं निवेदिता के अनुरोध पर, यह तस्वीर खींची गयी थी। यही श्री श्रीमाँ की प्रथम छबि है। उस समय उनकी उम्र ४५ वर्ष थी। स्वभावतः लज्जाशीला श्री श्रीमाँ सारदादेवी सर्वप्रथम तस्वीर खिंचवाने के लिए राजी नहीं हुईं। बाद में जब ओलि बुल ने विशेष अनुरोध किया, तब माँ राजी हुईं। पशुचर्म के आसन पर श्री श्रीमाँ बैठीं। सामने कई फूलदान रखे हुए थे। फोटो खींचने के लिए एक अंग्रेज फोटोग्राफर को बुलाया गया था। फोटो खींचने के पहले निवेदिता ने श्री श्रीमाँ के केश एवं कपड़ों को ठीक से सजा दिया था। फोटोग्राफर के सामने बैठने में श्रीमाँ सर्वप्रथम लज्जा का अनुभव कर रही थीं, कैमरे की ओर कतई देखना नहीं चाह रही थीं। अपनी ओर देखती हुई बैठी थीं एवं भावस्थ हो गयी थीं। फोटोग्राफर ने उसी अवस्था में पहली तस्वीर निकाली। माँ ने सोचा फोटो खींच लिया गया। अतएव अनजाने ही कैमरे की ओर नजर चली गयी। तभी फोटोग्राफर ने दूसरी तस्वीर खींच ली। वही तस्वीर आज श्रीरामकृष्णदेव की तस्वीर के साथ सर्वत्र पूजित हो रही है। माँ की तीसरी तस्वीर निवेदिता के साथ

खींची गयी। माँ स्निग्ध, शान्त दृष्टि से निवेदिता की ओर देख रही हैं, निवेदिता भी माँ की ओर देखती हुई बैठी हैं—मुखमण्डल पर आनन्द की हँसी एवं नम्रता झलक रही है।

* * * *

१८९९ ई. के मार्च का महीना। एक दिन गंगा के ऊपर नौका में बैठकर स्वामीजी निवेदिता के सात बातचीत कर रहे हैं। बातचीत के क्रम में स्वामीजी ने कहा, "वास्तविक मनुष्यत्व के स्वरूप को हमलोग अभी भी जान नहीं पाये हैं। जब वास्तविक मनुष्यत्व का उदय होता है, तब यह देखने की आवश्यकता नहीं होती है कि किस मार्ग पर सबसे कम बाधा आयेगी। उस समय प्रत्येक व्यक्ति को महान् कार्य करने की स्वाधीनता होगी। मेरा उद्देश्य है—साधारण मानव के बीच मनुष्यत्व को लाना।" निवेदिता ने उत्तर दिया, "स्वामीजी, इस कार्य में मैं आपकी सहायता करूँगी।" स्वामीजी ने कहा, "मैं वह जानता हूँ।" स्वामीजी को दिये गये इस वायदे का पालन निवेदिता ने पूरी तरह किया था। अपने जीवन को उन्होंने इस कार्य के लिए उत्सर्ग किया था।

* * * *

भगिनी निवेदिता, एक उच्च शिक्षिता महिला सरला घोषाल एवं अन्य सम्भ्रान्त महिलाओं के साथ एक दिन स्वामीजी के साथ मुलाक़ात करने बेलुड़ मठ गयीं। उनके सामने ही स्वामीजी ने निवेदिता को हुक्के में तम्बाकू सजाने का आदेश दिया। सेवा का थोड़ा-सा अधिकार पाकर निवेदिता मानो धन्य हो गयीं। उसी समय

उठकर हुक्के में तम्बाकू सजाकर ले आयीं। उपस्थित सभी लोग अवाक् हो गये। वे समझ सके : स्वामीजी एवं स्वामीजी के आदर्श के प्रति आत्मसमर्पण कर निवेदिता वास्तव में भारतीय हो गयी हैं।

* * * *

निवेदिता एक दिन स्वामीजी से मिलने बेलुड़ मठ गयीं। उनकी हार्दिक इच्छा थी स्वामीजी के निकट संन्यास-ग्रहण करने की। उन्होंने स्वामीजी से पूछा, "स्वामीजी, संन्यास-जीवन की योग्यता अर्जित करने के लिए मुझे क्या करना होगा?" स्वामीजी ने उत्तर दिया, "तुम जैसी हो वैसी ही रहो।" निवेदिता ने फिर कभी भी संन्यासी बनने की इच्छा नहीं की। अपने अन्दर त्यागव्रत को अव्याहत रखकर वे सदा ही ब्रह्मचारिणी बनी रहीं।

* * * *

निवेदिता जब भारतवर्ष आयीं तो उसके कुछ ही दिनों के उपरान्त रवीन्द्रनाथ ने अपनी छोटी लड़की की शिक्षा का भार ग्रहण करने का प्रस्ताव उनके समक्ष रखा। रवीन्द्रनाथ ने सोचा था कि निवेदिता एक सुशिक्षित अंग्रेज महिला हैं, प्रचलित रीति-रिवाज के मुताबिक अंग्रेजी भाषा के माध्यम से उनकी लड़की को शिक्षित करने हेतु निवेदिता ही सबसे अधिक उपयुक्त थीं। लेकिन निवेदिता ने उनसे कहा, "बाहर से कोई शिक्षा निगलने से क्या लाभ? जो जातिगत निपुणता एवं व्यक्तिगत विशेष क्षमता प्रत्येक मनुष्य के भीतर है, उसी को जाग्रत करना ही यथार्थ शिक्षा है—यही मेरी धारणा है।" वे राजी नहीं हुईं। भारतीय बालिकाओं को

अंग्रेजी भाषा एवं संस्कृति सिखलाने वे इस देश में नहीं आई थीं। उनका कर्मक्षेत्र सम्पूर्ण पृथक् था। परवर्ती काल में शान्तिनिकेतन में आश्रम की प्रतिष्ठा कर रवीन्द्रनाथ ने प्राचीन भारतीय रीति के अनुसार शिक्षा प्रदान करने की पद्धति को रूपायित किया था।

* * * *

बोसपाड़ा लेन में रहते समय निवेदिता अपनी पड़ोसियों के साथ घनिष्ठ रूप से मिलना-जुलना करती थीं। उनके सुख-दुःख में साथ देतीं। पड़ोस के लोगों ने भी उनके अन्दर के प्रेम का परिचय पाकर उन्हें अपना बना लिया था। लेकिन छुआछूत आदि सामाजिक रीति-रिवाजों का पालन उन्हें करना पड़ता। एक दिन रात में वह भोजन करने बैठी थीं। अचानक सामने के एक मिट्टी के मकान से किसी के रोने की आवाज सुनाई दी। खाना छोड़कर निवेदिता दौड़कर वहाँ पहुँची। उनके सामने की उस घर की छोटी लड़की मर गयी। निवेदिता को ऐसा लगा मानो उनका कोई अपना आत्मीय ही मर गया है। लड़की की माँ व्याकुल होकर रो रही थी। निवेदिता उसके मस्तक को अपनी गोदी में रखकर चुप बैठी रहीं। बहुत देर बाद उस महिला ने पूछा, "मेरी लड़की कहाँ चली गयी?" निवेदिता ने कहा, "चुप हो जाओ, तुम्हारी लड़की माँ काली के पास गयी हैं।" शोकातुरा माँ के मन में भी इस कथन से मानो थोड़ी-सी सान्त्वना मिली। वह दीर्घ निःश्वास छोड़कर चुप रही। निवेदिता ने अनुभव किया कि उन लोगों के साथ उनकी और कोई पृथक्ता नहीं है। वे उन लोगों में से एक हैं।

* * * *

सन् १८९८ ई. में कलकत्ता में प्लेग का पुनराविर्भाव हुआ। स्वामीजी ने इस रोग की रोकथाम के लिए सारा दायित्व निवेदिता को सौंपा। रामकृष्ण मिशन ने एक कमिटी बनायी—निवेदिता उसकी सचिव तथा स्वामी सदानन्द कार्याध्यक्ष बनाये गये। निवेदिता एवं स्वामी सदानन्द की प्लेग-सेवा कलकत्ता के इतिहास में स्मरणीय है। स्वामी सदानन्द मेहतरों को लेकर बागबाजार, श्याबाजार आदि अंचलों की बस्तियों की सफाई कराने लगे तथा निवेदिता मानो दसभुजा होकर कार्य की सब ओर से देखभाल करने लगीं। अंग्रेजी अखबार में सहायता के लिए आवेदन प्रकाशित किया गया। क्लासिक थियेटर में स्वामीजी के साथ 'प्लेग एवं छात्रों का कर्तव्य' विषय पर निवेदिता ने भाषण दिया। भाषण सुनकर पन्द्रह छात्रों ने प्लेग-सेवा में योगदान किया था। प्रत्येक रविवार शाम को सभी निवेदिता के समीप कार्यों की रपट पेश करते एवं अगले कार्यक्रमों को समझ लेते। निवेदिता के अन्तर्निहित नेतृत्व एवं संगठन शक्ति का परिचय पाकर उस समय सभी लोग अवाक् हो गये थे। उसके साथ ही उनके अन्दर था—असीम साहस एवं करुणा। वे खुद जाकर प्रत्येक कार्य का निरीक्षण करतीं एवं सुव्यवस्था करतीं। प्रत्येक मुहल्ले में जाकर प्लेग-रोकथाम हेतु विधि-निषेधात्मक 'हैण्डबिल' का वितरण करतीं। एक दिन उन्होंने देखा—बागबाजार मुहल्ले के एक रास्ते पर गन्दगी जमकर स्तूपाकार हो गयी है, लेकिन इसकी तरफ किसी की दृष्टि नहीं है। निवेदिता खुद झाड़ू अपने हाथों में लेकर रास्ता साफ करने लगीं। उनको देखकर मुहल्ले के युवक लज्जित हुए

एवं निवेदिता के हाथों से झाड़ू छीनकर रास्ता सफाई करने लगे।

* * * *

तत्कालीन सुविख्यात चिकित्सक डॉ. आर. जी. कर ने निवेदिता द्वारा की गई प्लेग-सेवा का एक अनुपम चित्र प्रस्तुत किया है : '१८९९ ई. में प्लेग महामारी के रूप में प्रकट हुआ। ... उस समय चैत मास की एक दोपहर में रोगी देखकर घर लौटने पर देखा, प्रवेश-द्वार पर धूल से भरे एक काष्ठासन पर एक यूरोपीय महिला बैठी हुई हैं। वे थीं भगिनी निवेदिता; एक खबर लेने के लिए मेरे आगमन की प्रतीक्षा बहुत देर से कर रही थीं।' उस दिन प्रातःकाल ही डॉ. कर बागबाजार के नीची जाति की एक बस्ती में प्लेग रोगग्रस्त एक बच्चे को देखने गये थे। वह बच्चा कैसा है एवं उसके लिए किस प्रकार की व्यवस्था करनी है, यह जानने के लिए निवेदिता उनके पास आयी थीं। डॉ. कर ने कहा, "बच्चे की अवस्था संकटजनक है। केवल इतना ही नहीं, इस रोग के खतरे के सम्बन्ध में उन्हें भी सावधान होने हेतु कहा क्योंकि वे प्लेग-रोगियों के घर-घर जाती थीं। परन्तु अपराह्न में पुनः जब वे उस बच्चे को देखने गये तो आश्चर्यचकित होकर उन्होंने देखा कि उनकी सारी होशियारी की उपेक्षा कर उस अस्वास्थ्यकर बस्ती के टूटे-फूटे सीलनभरे घर में उस बच्चे को गोदी में लेकर बैठी हैं। बच्चे की माँ पहले ही मर गयी है। दिन-रात अनवरत निवेदिता उस बच्चे की सेवा करती रहीं। घर की सफाई आवश्यक थी। निवेदिता ने स्वयं सीढ़ी पर चढ़कर घर की सफेदी की। रोगी की मृत्यु को निश्चित जानकर भी उसकी सेवा में कोई त्रुटि नहीं हुई।

दो दिनों के बाद उस बच्चे की मृत्यु हो गयी। मृत्यु के पहले उसने निवेदिता को ही 'माँ, माँ !' सम्बोधन करते हुए जकड़ लिया तथा परम शान्ति से चिरनिद्रा में सो गया।

केवल उस बच्चे के यहाँ ही नहीं, आबाल-वृद्ध-वनिता सभी रोगियों के घर इस करुणामूर्ति का आविर्भाव उस समय बागबाजार मुहल्ले का एक सुपरिचित दृश्य था। स्वामी सदानन्द एवं निवेदिता ने प्लेग-सेवा का कार्य इतने सुशृंखल रूप से किया था कि ज़िला चिकित्साधिकारी एवं अध्यक्ष ने उस सेवा-कार्य की भूरि-भूरि प्रंशसा की थी।

* * * *

सन् १९०२ ई. की चौथी जुलाई। निवेदिता ने रात्रि में स्वप्न देखा श्रीरामकृष्ण ने मानो पुनः शरीर त्याग किंया है। सुबह मठ से स्वामी सारदानन्द द्वारा लिखित पत्र लेकर एक संन्यासी निवेदिता के पास गये—स्वामीजी का महाप्रयाण हुआ है। एक मुहूर्त के लिए निवेदिता के लिए जगत्-संसार शून्य हो गया। दूसरे ही क्षण वे बेलुड़ मठ की ओर लपकीं और स्वामीजी के कमरे में आ उपस्थित हुईं। फर्श पर स्वामीजी शायी हैं। महाप्रेमिक, महासैनिक ने पहली बार विश्राम लिया है। एक पंखा लेकर स्वामीजी के सिर के पास निवेदिता बैठीं, तथा उन्हें चुपचाप हवा करने लगीं।

५ जुलाई की दोपहर में गेरुआ कपड़े से स्वामीजी का पुण्यशरीर गंगातीर पर अन्तिम संस्कार हेतु ढँककर लाया गया। निवेदिता के अन्दर एक आकांक्षा जगी कि जिस वस्त्र से स्वामीजी को ढँका गया था, वह यदि स्वामीजी की अति प्रिय जोसेफाइन

मैक्लाउड हेतु स्मृति-चिह्न के रूप में उन्हें मिलता! स्वामी सारदानन्द को उन्होंने पूछा कि उस वस्त्र को भी अग्नि में आहुति दी जायगी या नहीं। स्वामी सारदानन्द उनके मन की बात समझकर बोले, "तुम्हारी यदि इच्छा हो तो वह ले सकती हो।" वैसा करना ठीक होगा या नहीं—यह निवेदिता स्थिर नहीं कर पायीं। अतएव राजी नहीं हुईं। अपलक दृष्टि से ज्वलन्त चिता की ओर देखती हुई वे बैठी रहीं। संध्या प्राय: ६ बज गये। चिताग्नि प्राय: निर्वापित। अचानक उन्हें ऐसा लगा मानो कोई उनकी कमीज के हस्तभाग को खींच रहा है। निवेदिता ने दृष्टि डाली, तो देखा उस वस्त्र का एक टुकड़ा उनके पैर के पास पड़ा हुआ है। परम आग्रह के साथ उसे उन्होंने उठा लिया।

* * * *

निवेदिता कहा करतीं, "मैं जानती हूँ कि मेरा कार्य है-जाति का गठन करना। स्वामीजी के शरीरत्याग के बाद निवेदिता ने अनुभव किया था कि स्वामीजी के भावानुसार सारे देशवासियों के अन्दर देशात्मबोध जाग्रत करना होगा। यह कार्य स्वामीजी उनके लिए ही निर्दिष्ट कर गये हैं। देशभर में घूमकर उन्होंने भाषण देना शुरू किया।

सन् १९०२ ई. के अक्तूबर महीने में निवेदिता नागपुर गयीं। उस समय स्थानीय मॉरिस कॉलेज में एक सभा की सभानेत्री के रूप में निवेदिता को आमन्त्रित किया गया। जब वे वहाँ गयीं तो उनके द्वारा क्रिकेट खिलाड़ियों के बीच पुरस्कार वितरण कराया गया। पुरस्कार वितरण के बाद निवेदिता ने अपने भाषण में

कॉलेज के छात्रों को खूब फटकारा। वह दशहरा का समय था। निवेदिता ने कहा, "दशहरा के समय जब अस्त्रपूजा करनी चाहिए, देवी दुर्गा की आराधना कर शक्ति का आह्वान करना चाहिए, उस समय एक विदेशी खेल को लेकर छात्रों द्वारा उछल-कूद करना अत्यन्त लज्जा का विषय है। वे यदि पहले जानतीं कि सभा का उद्देश्य क्या है, तो कभी-भी वे उस सभा में सभानेत्री होने के लिए राजी नहीं होतीं। उन्हें आशा थी कि भोंसले राजाओं की राजधानी में वह मराठा वीरता का चिह्न देख पायेंगी। परन्तु वैसा कुछ न देखकर वे मर्माहत हुईं। निवेदिता ने छात्रों से माँग की कि दूसरे दिन छात्रगण उनके समक्ष तलवार चलाना, मल्लयुद्ध करना आदि सामरिक क्रियाकलापों का प्रदर्शन करें। कॉलेज के अधिकांश छात्र इनका अभ्यास नहीं करते थे। किसी प्रकार बाहर से कुछ लोगों को बुलाकर तथा कॉलेज के एक छात्र को लेकर दूसरे दिन उन्हें उस प्रकार का प्रदर्शन दिखलाया गया। उन्होंने छात्रों के समक्ष कहा, "हमलोग अभी अधिक मात्रा में उच्च शिक्षा प्राप्त करते हैं, अतिरिक्त परिमाण में स्नातक विश्वविद्यालय से निकलते हैं, जो एकदम भग्नशरीर होते हैं, विपत्ति के समय आत्मरक्षा नहीं कर पाते हैं, अपनी माँ-बहनों की मर्यादा की रक्षा नहीं कर पाते। इन सब ध्वंसपूंजों से समाज का कोई उपकार नहीं होगा। देश को शरीर-मन से बलिष्ठ देशप्रेमिकों की आवश्यकता है। देश उन लोगों को नहीं चाहता, जो विदेशी सरकार की सेवा करता है तथा साथ ही स्वदेशवासियों के ऊपर आक्रमण करता है। केवल बलिष्ठ देशप्रेमी लोग ही देश का उत्थान कर सकते हैं।"

* * * *

दो वर्ष बाद सन् १९०४ ई. के जनवरी महीने में पटना में भी उन्होंने छात्रों के सामने एक ही स्वर में भाषण दिया। उन्होंने कहा, "बालकों के मुखमण्डल पर अपरिमेय शान्ति देखकर मैं दुःखी होऊँगी। मैं चाहती हूँ कि तुमलोग आपस में मल्लयुद्ध करो, मुक्केबाजी करो, तलवार चलाओ। शान्त-शिष्ट निरीह लोग नहीं चाहिए। चाहिए शक्तिशाली मनुष्य।

'केवल बलिष्ठ होना ही श्रेयस्कर नहीं है, वीर होना होगा। वही वीर है जो लड़ाई करना पसन्द करता है। लड़ाई करो, लड़ाई करो, केवल लड़ाई करो। परन्तु उसमें नीचापन या कड़ूआपन न रहे। ... जब संग्राम की पुकार आयेगी उस समय सोये मत रहना।'

* * * *

सन् १९०३ ई. का ग्रीष्मकाल। निवेदिता मेदिनीपुर आ रही हैं। उनका स्वागत करने हेतु स्टेशन पर अगणित लोग उपस्थित हैं। निवेदिता ट्रेन से उतरने के साथ ही सभी लोग "Hip Hip Hurray" कहकर चिल्ला उठे। उन्होंने सोचा था कि इंग्लैण्ड आयी एक श्वेतांगिनी का स्वागत उसी तरह करना चाहिए। लेकिन निवेदिता मानो सिहर उठीं। हाथ दिखाकर उन्होंने सभी को चुप होने के लिए इशारा किया। उसके बाद कहा, "Hip Hip Hurray" अंग्रेजों की विजयोल्लास-ध्वनि है; भारतीयों को उसका व्यवहार कभी नहीं करना चाहिए। उन्होंने हाथ उठाकर तीन बार उच्च स्वर में कहा, "वाह गुरूजी की फतह, बोल बाबूजी का खालसा।" स्टेशन पर समवेत सभी लोगों ने उनके साथ स्वर में स्वर मिलाया।

दोपहर के एक बजे थे, अत्यन्त गरम था क्योंकि ग्रीष्मकाल था। लेकिन जिस घर में निवेदिता के ठहरने की व्यवस्था की गयी थी, वहाँ पहुँचते ही उन्होंने सारे दरवाजे, खिड़कियाँ खोल दीं। गरम हवा के झोकों से घर भर गया। निवेदिता को कोई परवाह नहीं। खाट के ऊपर से गद्दी को हटाकर फर्श पर अपनी छोटी चटाई बिछायी तथा उसके ऊपर अपना पतला वस्त्र डाल दिया। यह देखकर सभी अवाक् हो गये। तब उन्होंने कहा कि वे संयम का अभ्यास कर रही हैं। वे लोग जिस कार्य में व्रती हुए हैं, उसमें उस तरह के संयम का अभ्यास करना उचित है। देश को जो लोग स्वाधीन करना चाहते हैं, उन्हें किसी भी प्रकार की विलासिता शोभा नहीं देती।

निवेदिता के पहले भाषण में काफी संख्या में लोग आये थे, लेकिन राजनैतिक उत्तेजना से पूर्ण उनके भाषण को सुनकर वक्तृता समाप्त होने के पहले ही अधिकांश लोग चले गये। एक अवकाशप्राप्त स्थानीय सरकारी कर्मचारी ने उनको यह बात बताई तथा कहा कि परवर्ती भाषण में भी इसी तरह अधिक लोग नहीं आयेंगे। निवेदिता ने उत्तर दिया, "आप मुझे भय मत दिखाइये, मेरी शिराओं में अभी भी स्वतन्त्र जाति का रक्त प्रवाहित हो रहा है। जो लोग डरते हैं, उनके लिए मेरा भाषण नहीं है।" इसके बाद वास्तव में कम लोग आये। परन्तु निवेदिता ने एक ही आग्रह के साथ पाँच दिनों तक वक्तृता प्रदान की। सामरिक क्रियाकलापों का अभ्यास करने हेतु स्थानीय युवकों के लिए उन्होंने एक अखाड़े का उद्घाटन किया। खुद तलवार चलाकर, मुगदर भाँजकर, लाठी घुमाकर तथा अन्यान्य कसरत कर उन्होंने युवकों को

अनुप्राणित किया। स्थानीय दो-एक महिलाओं को उन्होंने बन्दूक चलाना भी सिखा दिया।

* * * *

सन् १९०५ ई. की ११ फरवरी। लॉर्ड कर्जन ने कोलकाता विश्वविद्यालय के समावर्तन समारोह में भाषण देते हुए समय कहा, 'प्राच्य देशवासियों की तुलना में पाश्चात्य देशवासियों की सत्यनिष्ठा अधिक है। सभा में शिक्षित भारतवासी अपमानित होने पर भी किसी ने इसके विरोध में एक शब्द भी उच्चारण नहीं किया। निवेदिता उस सभा में उपस्थित थीं। अपमान से वे जल उठीं। इस देश का असम्मान सहन करना उनके लिए सम्भव न था। सभा के अन्त में वे सर गुरुदास बन्द्योपाध्याय को साथ लेकर वहाँ से सीधे इम्पीरियल लाइब्रेरी गयीं। "Problems of the far east" नामक पुस्तक को निकाला तथा दिखा दिया कि पुस्तक के १५५-५६ पृष्ठों में लॉर्ड कर्ज़न के कुछ मिथ्या वचन छपे हुए हैं। १३ फरवरी के अमृतबाजार पत्रिका में लॉर्ड कर्ज़न द्वारा विश्वविद्यालय के समावर्तन सभा में की गयी उक्ति तथा पुस्तक से उद्धृत अंशों को छापकर लॉर्ड कर्ज़न का मिथ्याचारिता प्रमाणित कर दी गयी। दूसरे दिन मन्तव्यों के साथ statesman एवं अमृतबाजार पत्रिका में इस अंश को छापा गया। सारे देश के शिक्षित समाज में लॉर्ड कर्ज़न की मिथ्याचारिता को लेकर हलचल मच गयी। १४ फरवरी को statesman के सम्पादकीय पृष्ठ पर निवेदिता द्वारा लिखित 'सत्य का उच्चतम आदर्श' नामक प्रबन्ध छापा गया। इस लेख में महाभारत, रामायण तथा पुराण से कई घटनाओं को उद्धृत

कर निवेदिता ने दिखा दिया कि इस देश में सत्य की धारणा कितनी ऊँची है। उसके साथ ही सभा में उपस्थित छात्रों की कापुरुषोचित मौनता से मर्माहत निवेदिता ने तीव्र धिक्कार देते हुए लिखा, 'छात्रों के प्रति ही लॉर्ड कर्ज़न ने ये सारी बातें कही थीं, और छात्रों ने अतिशय नीरवता के साथ उन्हें ग्रहण किया था। उन्होंन अच्छा ही किया था! लेकिन वह उतना अच्छा नहीं लगता जब सोचती हूँ कि अपने मृत पूर्वपुरुषों के विरुद्ध, राष्ट्रीय नैतिक आदर्श के विरुद्ध लगाये गये अभियोग को सुन लिया, परन्तु उसके विरोध में एक शब्द भी उच्चारण करने योग्य पुरुष वहाँ नहीं था।'

* * * *

मनुष्य के अन्दर साहस का अभाव देखकर निवेदिता बहुत अप्रसन्न होतीं। एक दिन साहित्यकार दीनेशचन्द्र सेन तथा ब्रह्मचारी गणेन महाराज को साथ लेकर निवेदिता गंगा के किनारे टहलने गयी थीं। सबके आगे दीनेश बाबू जा रहे थे, उनके पीछे निवेदिता तथा सबसे पीछे गणेन महाराज। उसी समय एक साँड क्रोधित होकर उनकी ओर दौड़ा। दीनेशबाबू भयभीत होकर भाग चले। निवेदिता एकदम साँड के सामने पड़ गयीं। ब्रह्मचारी गणेन महाराज ने जल्दी से आकर साँड को भगा दिया। उसके बाद पुनः तीनों लोग एक साथ होने पर व्यंग्य करके हँसते-हँसते निवेदिता दीनेशबाबू से कहने लगीं, "दीनेशबाबू, आज आपने पुरुषजाति का मुख उज्ज्वल किया है। आज का यह कार्य आपके कीर्तिस्तम्भ के रूप में बना रहेगा।" दूसरे ही क्षण उनके मुखमण्डल से हँसी गायब हो गयी। तीव्र स्वर में उन्होंने कहा, "दीनेशबाबू, आपको

क्या थोड़ी भी लज्जा नहीं आयी?" दीनेशबाबू और क्या करें ! कार्य तो उन्होंने वास्तव में अच्छा नहीं किया था। इसीलिए निर्विवाद रूप से सब हजम करना पड़ा।

निवेदिता राजनीति में उग्र मतावलम्बी थीं तथा दीनेशबाबू थे साधे-सादे डरपोक स्वभाव के मनुष्य। दीनेशबाबू को वे अति स्नेह करतीं। दिनेशबाबू भी निवेदिता की बहुत श्रद्धा करते तथा उनके तिरस्कार को नीरव होकर सहन करते क्योंकि वे जानते कि निवेदिता के द्वारा प्रदत्त विशेषणों में अधिकांश ठीक ही होते। राजनीति सम्बन्धी कोई भी चर्चा निवेदिता दीनेशबाबू के साथ करना नहीं चाहती थीं। दीनेशबाबू जब कभी राजनीति सम्बन्धी चर्चा उनके साथ करना चाहते, तो वे क्रोधकर कहतीं, "दीनेशबाबू, वह आपका क्षेत्र नहीं है। मैं आपके साथ उस सम्बन्ध में चर्चा नहीं करूँगी।"

दीनेशबाबू निवेदिता के पड़ोसी थे। निवेदिता के साथ उनका सुन्दर प्रीतिपूर्ण सम्पर्क था। निवेदिता कहतीं कि वे दीनेशबाबू को बहुत स्नेह इसीलिए करती हैं क्योंकि उन्होंने उनके भीतर देश के प्रेम को देखा है। दीनेशबाबू द्वारा 'बंगलादेश का इतिहास' के ऊपर अंग्रेजी भाषा में लिखित एक बृहदाकार पुस्तक का सम्पादन निवेदिता ने प्रायः एक वर्ष अति परिश्रम करके किया था। किसी-किसी दिन सुबह से रात दस बजे तक उन्होंने उस पुस्तक का कार्य किया था। बीच में केवल २-५ मिनटों के लिए भोजन मात्र कर लिया करतीं। दीनेश सेन ने लिखा है : 'किसी विषय का उत्तरादायित्व लेने पर निवेदिता कभी यह नहीं सोचतीं कि यह दूसरे का है। उसे पूरी तरह अपना मानकर कार्य करतीं। जगदीशचन्द्र

बसु को भी पुस्तक रचना में उन्होंने इसी तरह सहायता की थी।

* * * *

स्वामीजी के स्वदेशप्रेम के सम्बन्ध में निवेदिता लिखती हैं : 'भारतवर्ष स्वामीजी के गम्भीरतम आवेग का केन्द्र था। ... भारतवर्ष उनके हृदय के अन्दर नित्य स्पन्दित होता, उनकी धमनियों में प्रतिध्वनित होता। भारतवर्ष था उनका दिवास्वप्न, उनकी रात्रि का दुःस्वप्न।

यह देशप्रेम निवेदिता के अन्दर भी समान रूप से मूर्त हो उठा था। उनके मुख से मन्त्र की तरह नित्य उच्चारित होता : भारतवर्ष, भारतवर्ष। 'भारतवर्ष' शब्द को भाव से विभोर होकर वे जप करतीं। भारतवर्ष के छोटे-मोटे सारे रीति-रिवाजों को श्रद्धा के साथ पूजा की दृष्टि से देखतीं। कोई आचार हो सकता है कि वर्तमान समय में कार्यकर नहीं है, परन्तु अतीत में कभी-न-कभी वह भारतवर्ष के लिए कल्याणप्रद था। अतएव वे उससे भी श्रद्धा करतीं। गंगा के घाट पर नौके में चढ़ने से पहले वे भारतीय नारी की तरह गंगाजल को मस्तक से लगाकर स्पर्श करतीं। किसी भी मन्दिर अथवा मूर्ति के सामने आने के साथ ही वे प्रणाम-मुद्रा में हाथ जोड़कर रखतीं।

अमृतबाजार पत्रिका के कार्यालय में शिशिरकुमार घोष के आमन्त्रण पर निवेदिता तथा क्रिस्टीन गयी थीं। वहाँ कई भारतीय महिलाएँ भी उपस्थित थीं। शिशिरबाबू ने उनके साथ परिचय करवा दिया। निवेदिता उनमें से ही एक हो गयीं। ऐसा लगा मानो उन भारतीय महिलाओं के साथ उनका पुराना परिचय है। उनके साथ कई तरह की बातचीत करने लगीं। कमरे के एक कोने में

पीतल के दीवट पर मिट्टी का दीया देखकर दोनों अति मुग्ध हो गयीं। अत्यन्त आग्रह के साथ गौर से देखने लगीं। बाद में 'आरती' शब्द का उच्चारण कर हाथ जोड़कर प्रणाम किया। उपस्थित सभी लोग, विशेषकर महिलाएँ, उनके इस भाव को देखकर अवाक् हो गयीं। वे लोग बचपन से ही इन चीजों को देखती आ रही थीं, लेकिन वह सामान्य दीवट एवं दीया जो कितने पवित्र भाव का प्रतीक है, इसका अनुभव उन्होंने निवेदिता की दृष्टि के प्रभाव से किया।

* * * *

गिरिबाला घोष निवेदिता विद्यालय की छात्रा थीं। वह बाल-विधवा थीं। उनकी एक लड़की थी। बागबाजार में मामा के यहाँ रहती थी। लड़की मात्र एक साल स्कूल गयी थी कि उसकी शादी हो गयी। विवाह के दूसरे दिन निवेदिता उसे आशीर्वाद करने गयीं। वर-वधू को देखकर हर-गौरी की बात याद आ गयी। भावविभोर होकर बारम्बार वह बोलने लगीं : 'शिवदुर्गा ! शिवदुर्गा !' आवासगृह में घुटने टेककर बैठी थीं तथा दोनों हाथ फैलाकर मानो नशे में अपना बदन हिला-हिलाकर बारम्बार 'शिवदुर्गा ! शिवदुर्गा !' उच्चारण कर रही थीं। किसी भी ओर उनका मन नहीं था। कुछ क्षण तक इस अवस्था में रहने के बाद अपने आप कमरे से बाहर चली गयीं।

* * * *

कविता समझने की असाधारण क्षमता निवेदिता के अन्दर

थी। शून्य पुराण से शिवसम्बन्धी एक कविता दीनेशबाबू ने निवेदिता को दिखाया था। उसमें लिखा हुआ था—'शिव, तुम क्यों भिक्षा करके खाते हो? भिक्षा अति हीनवृत्ति है। कभी कुछ मिलता है, तो कभी खाली हाथ लौटना पड़ता है। यदि तुम कृषि कार्य करो तथा धान से चावल निकालो तो तुम्हारा वह कष्ट दूर होगा। हे प्रभु, तुम कितने दिनों तक नंगे होकर वाघाम्बर पहनकर रहोगे? यदि कपास उपजाकर रुई निकालो तो कपड़े पहनकर कितने खुशी होओगे।' इस अति ग्रामीण कविता के अन्दर भारतीय भाव की कोई अपूर्व प्रेरणा छिपी हो सकती है, इसका आभास भी दीनेशबाबू को न था। लेकिन निवेदिता उसको पढ़कर अति मुग्ध होकर केवल 'आश्चर्य, आश्चर्य' कहने लगीं। दीनेशबाबू ने पूछा, "सिस्टर, इसमें आपने ऐसा क्या पाया कि दीन-दरिद्र व्यक्ति जैसे अचानक राज्य पा लेने पर खुश होता है, वैसे ही आप हो रही हैं?" निवेदिता उस कविता से नज़र न हटाकर, हाथ पर हाथ रखकर आनन्द और गर्व से उत्फुल्ल होकर कहने लगीं, "दीनेशबाबू, यह एक आश्चर्य कविता है।' दीनेशबाबू ने स्तम्भित होकर सोचा : पगली के मस्तिष्क में यह क्या ख्याल आया है। अगले दिन निवेदिता की एक अंग्रेज सहेली (सम्भवतः सिस्टर क्रिस्टीन) को एकान्त में पाकर पूछा, "निवेदिता को शिव-सम्बन्धी इस कविता में आश्चर्यजनक क्या दिखाई दिया, यह मेरी समझ में नहीं आया ! आपने क्या कुछ सुना है?" उन्होंने कहा, "सुना है साधारण उपासक भक्त अपने देवताओं से सहायता माँगते हुए प्रार्थना करते हैं—हे भगवन् ! मुझे धन दीजिये, स्वास्थ्य दीजिये, इत्यादि। लेकिन इस कविता में भक्त अपने उपास्य के

प्रति इतना अनुरक्त हो गया है कि अपने आपको सम्पूर्ण रूप से भूल गया है। अपने दुःख की बात उसे याद नहीं। उपास्य के दुःख से वह अत्यन्त दुःखित है तथा उपास्य देवता का कष्ट जिससे दूर हो, वही उसके चिन्तन का एकमात्र विषय बन गया है।'' दीनेशबाबू तब समझ पाये कि कविता पढ़कर क्यों निवेदिता इतना आनन्दित हो रही थीं। निवेदिता मानो उसी भाव की प्रतिमूर्ति थीं।

* * * *

निवेदिता कोशिश करतीं कि आचार-व्यवहार, भाषा, वेशभूषा, शिक्षा, संगीत सभी कुछ के माध्यम से छात्राओं के अन्दर राष्ट्रीय भाव सुदृढ़ रूप से अंकित हो। प्रतिदिन विद्यालय में 'वन्दे मातरम्' गाने का प्रचलन था। कोई भी स्वदेशी वस्तु चाहे कितनी ही नगण्य क्यों न हो, उनके लिए देवता के विग्रह के समान आदरणीय होती थी। देशी सभी कुछ को एक गम्भीर भाव से देखने की दृष्टि वे छात्राओं के अन्दर संचारित करना चाहतीं। एक बार कुछ राजनैतिक बन्दियों को सरकार ने अन्दमान जेल से रिहा किया। उस उपलक्ष्य में निवेदिता ने विद्यालय के प्रवेशद्वार को केले के पेड़ तथा मंगलघट स्थापित कर सजाया तथा उस आनन्द में उस दिन स्कूल में छुट्टी दे दी गयी। सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी का भाषण सुनने हेतु विद्यालय की प्रौढ़ छात्राओं को गाड़ी पर बिठाकर ब्राह्म स्कूल ले जायी करतीं। बगल के पार्क में सुरेन्द्रनाथ राष्ट्रवादी भाषण देते तथा छात्राएँ ब्राह्म स्कूल के बरामदे पर खड़ी होकर वह सुनतीं।

* * * *

एक दिन आचार्य जगदीशचन्द्र बसु की पत्नी श्रीमती अबला बसु स्कूल देखने आयीं। उनको साथ पाकर निवेदिता बहुत आनन्द करने लगीं। बालिकाओं के द्वारा 'बंग आमार जननी आमार' गाना सुनवाया। वह गाना जब बालिकाएँ गा रही थीं, उस समय निवेदिता आनन्द से विभोर हो रही थी। उनकी आँखों से आनन्द के अश्रु बहने लगे।

* * * *

वे श्वेतांगिनी थीं, अतएव कई छात्राएँ उनके हाथों का छुआ खाती न थीं। जिन्हें वे प्राणों से भी अधिक प्यार करतीं, उनके इस प्रकार के आचरण से वे रुष्ट नहीं होतीं, बल्कि उनकी निष्ठा को मर्यादा देतीं तथा उनके संस्कारों को किसी प्रकार की चोट न पहुँचे, उस सम्बन्ध में सदा सावधान भी रहतीं। प्रचलित आचार-विचारों पर वे कभी आघात नहीं करतीं।

एक बार अपने स्कूल की छात्राओं को लेकर म्यूज़ियम (अजायबघर) देखने गयी थीं। बहुत समय तक घूमने के बाद छात्राएँ क्लान्त तथा तृष्णार्त हो उठीं। निवेदिता शीघ्रतापूर्वक अपना ग्लास धोकर तथा नल के मुख को मिट्टी से माँजकर एक ग्लास पानी ले आयीं तथा एक बालिका के मुँह के सामने रखीं। वह अत्यन्त प्यासी थीं, फिर भी विदेशी निवेदिता के हाथ का छुआ पानी नहीं पी सकीं। एक दूसरी लड़की फौरन उस लड़की के हाथ से पानी लेकर पी गयी ताकि निवेदिता के मन में कोई कष्ट न हो। पहली लड़की के ऊपर निवेदिता नाराज़ नहीं हुईं-त तथा उनके मन में कोई कष्ट भी नहीं हुआ। बल्कि उस लड़की की

निष्ठा का परिचय पाकर वे खुशी ही हुईं। छोट-मोटे प्रयोजनवश प्रचलित आचारों का उल्लंघन करना वे पसन्द न करतीं।

* * * *

एक बार नाव किंयाए पर लेकर अपनी छात्राओं को साथ ले निवेदिता दक्षिणेश्वर गयीं। नाव से उतरकर वे सर्वप्रथम श्रीरामकृष्ण के कमरे में गयीं। सबों के साथ बहुत देर तक ध्यान में बैठी रहीं। उसके बाद छात्राओं को लेकर भवतारिणी काली के दर्शन करने गयीं। छात्राओं ने माँ काली को प्रणाम किया। किन्तु निवेदिता को मन्दिर में प्रवेशाधिकार नहीं था। गंगा के किनारे से चाँदनी के अन्दर से होते हुए उन्हें नाट्यमन्दिर के अन्तिम छोर पर जाना पड़ा तथा वहीं पर खड़ी होकर माँ भवतारिणी के दर्शन करने पड़ रहे हैं, यह देखकर छात्राएँ व्यथित हुईं। परन्तु निवेदिता को कोई दुःख नहीं हुआ—वहीं से माँ का दर्शन कर वे आनन्द विह्वल हो गयीं।

* * * *

अपने स्कूल में जब उन्होंने पहली बार पूजा करवायी तो देवी को फल, मेवा, खजूर, मिठाई आदि निवेदन किया गया, पकाया हुआ कोई भोग नहीं दिया गया ताकि छात्राओं के संस्कार में किसी प्रकार की चोट न पहुँचे। पुष्पांञ्जलि समाप्त होने पर फल-मिठाई प्रसाद छात्राएँ अपने-अपने आँचलों में बाँधकर घर ले गयी थीं—स्कूल भवन में उसे खाने का साहस नहीं कर सकीं। परन्तु परवर्ती पूजा के समय दूसरा ही दृश्य दिखाई दिया। उनके प्रेम के प्रभाव से संस्कार सीमा-रेखा मानो खण्डित हो गयी थी। छात्राओं के

आग्रह से स्कूल भवन के एक मंजिले में पूड़ी, तरकारी आदि बनाकर देवी को निवेदित किया गया। हिन्दू विधवा छात्राओं के संस्कार की मर्यादा की रक्षा हेतु निवेदिता तंथा क्रिस्टीन एक बार भी दुमंजिले से एक मंजिल पर नहीं उतरीं। पूजा समाप्त होने पर कुछ छात्राएँ उन्हें जोरपूर्वक नीचे उतार लायीं। परम आनन्द पूर्वक उनके साथ बैठकर उन्होंने प्रसाद ग्रहण किया।

* * * *

अंग्रेजों के अन्धानुकरण काल में भारतीय नारियों के लिए राष्ट्रीय धारानुरूप शिक्षा का शुभागमन था इंग्लैण्ड-निवासी एक महिला का हाथ पकड़कर। कितनी ही सामाजिक प्रतिकूलताओं, कितने ही शारीरिक कष्ट एवं कितनी दरिद्रता के साथ संग्राम कर निवेदिता अपना स्कूल चलाती थीं—यह हमें मालूम नहीं। कभी जान भी नहीं पाएँगे क्योंकि निवेदिता दूसरों के दुःख से जितनी आसानी से विह्वल होतीं, अपने दुःख-कष्टों के प्रति उतनी ही उदासीन थीं। किन्तु वास्तव में इस स्कूल को चलाने के लिए उन्हें अनाहार, अर्धाहार भी रहना पड़ा था। पहले-पहल कोई भी हिन्दू नारी म्लेच्छ समझकर उनके यहाँ परिचारिका का कार्य करना नहीं चाहती। कार्य करने पर भी उनके द्वारा छुए हुए बरतनों को स्पर्श करने में उन्हें आपत्ति थी। खुद के व्यवहार के बरतनों को पहले उन्हें ही धोना पड़ता। खाना पकाने में असुविधा के कारण वे दूध एवं फल-मूल खाकर ही दिन व्यतीत करतीं। धीरे-धीरे निवेदिता के व्यक्तिगत गुणों के कारण बागबाजार मुहल्ले की महिलाओं ने उन्हें अपना बना लिया था। अशिक्षित परिचारिका का स्वाभाविक

संस्कार भी निवेदिता के प्रेम के प्रभाव से मिट गया था अथवा भारत के प्रति निवेदिता का आत्मनिवेदन इतना स्पष्ट हो उठा था कि वे भी समझने में समर्थ हुई थीं कि 'मेमसाहब' होने पर भी निवेदिता भारत की ही हैं। इसलिए निवेदिता के द्वारा छुए गये बरतनों को धोने में परिचारिका को और कोई हिचकिचाहट नहीं रही। लेकिन अन्य कोई 'मेमसाहब' के आने पर उनके बरतनों को निवेदिता को ही धोना पड़ता था।

जिस मकान में निवेदिता रहतीं—१६ नं. बोसपाड़ा लेन—वह उनका स्कूल तथा निवास स्थान दोनों ही था। मकान उतना स्वाथ्यकर नहीं था। फिर शैशव काल से ही शीतप्रधान देश में रहने के कारण ग्रीष्म की गर्मी में उन्हें बहुत ही कष्ट होता। छत भी बहुत नीचा था। ग्रीष्म काल की गर्मी से कमरे इतने गर्म हो उठते कि कुछ देर कमरे में रहने से ही सिरदर्द शुरू हो जाता। उस समय विद्युत् प्रकाश या पंखे नहीं थे। उनके पास केवल एक हाथ-पंखा रहता। उसी कमरे में प्रचण्ड गरम कमरे में भी सब सहते हुए वे लिखने का कार्य करतीं। यह बताने की आवश्यकता नहीं है कि लिखते समय हाथ-पंखा भी व्यवहार करना सम्भव नहीं होता। लिखने में तन्मय रहने के कारण शायद गर्मी का अनुभव उन्हें नहीं होता। बीच-बीच में कमरे से बाहर आतीं, यह देखने के लिए कि उनकी छात्राएँ क्या कर रही हैं। उस समय दिखाई पड़ता कि गर्मी से उनका मुखमण्डल लाल हो गया है। एक दिन यह देखा गया कि छात्राओं की देखभाल करते समय बीच-बीच में वे अपना सिर हाथ से दबा रही हैं। किसी के पूछने पर वे बोलीं, "सिर में बहुत तकलीफ है। उसके बाद वे पुनः

अपने कमरे में जाकर लिखने में तन्मय हो गयीं। इस मकान में रहने के कारण, निवेदिता बारम्बार बीमार पड़ जाती थीं। मलेरिया का शिकार होना पड़ा था। लकिन सैकड़ों अनुरोध करने पर भी उन्होंने उस मकान को नहीं छोड़ा। वह मुहल्ला ही अस्वास्थ्यकर था। फिर भी सबों के अनुरोध करने पर भी शहर के अपेक्षाकृत स्वास्थ्यकर किसी स्थान पर उन्होंने अपना निवासस्थान नहीं बदला। भारततीर्थ के जिस स्थान ने सर्वप्रथम उन्हें आश्रय प्रदान किया, वह कितना ही अस्वास्थ्यकर क्यों न हो, उसे छोड़कर वे कैसे जा सकती थीं ! वे कहतीं, "इस स्थान ने मुझे दत्तक के रूप में स्वीकार किया है, इसे छोड़कर मैं और कहीं नहीं जाऊँगी।"

इस पर आर्थिक कष्ट अलग था। पुस्तकादि लिखने से जो आमदनी होती और श्रीमती ओली बुल जो सहायता करतीं— उसीसे उन्हें सारा खर्च चलाना पड़ता—अपना तथा स्कूल का। इतना परिश्रम करने पर भी जब आर्थिक संकट होता, तो कौन-सा व्यक्तिगत खर्च कम किया जाए, उसी ओर उनकी दृष्टि पहले जाती। शरीर रक्षा के लिए जिस कम से कम खर्च की ज़रूरत थी, वह भी उन्हें बर्दाश्त नहीं होता। श्रीमती अबला बसु ने कहा है, "उनके पड़ोसी यह जानते कि उनकी आमदनी का अधिकांश भाग किस तरह दुःखियों की आवश्यकता पूर्ति तथा भूखों की भोजन-व्यवस्था में खर्च होते।" इसके लिए उन्होंने अपनी साधारण स्वच्छन्दता का भी त्याग कर दिया था। रवीन्द्रनाथ ने भी अपने संस्मरण में यही कहा है : 'निवेदिता ने जो इस विद्यालय का खर्च वहन किया, वह चन्दे के रुपये से, किसी अतिरिक्त राशि से भी

नहीं, बल्कि अपने पेट के भोजनांश से। यही सत्य बात है।"

* * * *

गिरिबाला घोष उस समय २२-२३ वर्ष की विधवा थीं। वे अपनी लड़की को साथ लेकर बागबाजार में अपने मामा के घर रहतीं। निवेदिता के स्कूल में पढ़ने की उन्हें बहुत इच्छा थी। लेकिन अभिभावकगण उन्हें एकदम अनुमति नहीं देते। उनकी नानी जब गंगास्नान करने जातीं, तब रास्ते से सुनतीं कि स्कूल की छात्राएँ समवेत स्वर में स्तवपाठ कर रहीं हैं। आखिरकार सामयिक रूप से निश्चिन्त होकर उन्हें स्कूल में भर्ती तो कर दिया गया, लेकिन विभिन्न बहाने से उन्हें स्कूल नहीं जाने दिया जाता। उसको ले आने के लिए जो स्कूल गाड़ी आती, उसे अधिकांश दिन खाली लौट जाना पड़ता। गाड़ी बड़ी थी, सँकरी गली के भीतर प्रवेश कराने में गाड़ी को नुकसान हो सकता था। अतएव कोचवान गाड़ी को गली के भीतर नहीं ले जाना चाहता। गली के अन्दर पैदल चलकर गिरिबाला गाड़ी पर चढ़तीं—इसपर घर के मालिकों को आपत्ति थी। निवेदिता के निर्देशानुसार अन्ततोगत्वा गाड़ी को गली के अन्दर ले जाकर उसे ले आना पड़ता। एक दिन घर के कोने से लगकर गाड़ी का थोड़ा नुकसान हुआ। निवेदिता किसी भी वस्तु का नुकसान या अपव्यय अत्यन्त नापसन्द करतीं। दूसरे ही दिन वे स्वयं गिरिबाला के घर गयीं। उनके मामा के साथ मुलाक़ात की तथा बहुत देर तक बातचीत करने के बाद उन्होंने कहा, "भगवान श्रीकृष्ण, बुद्ध, चैतन्य, जो भी धर्म प्रचार हेतु अवतरित हुए थे उन्हें बहुत दुःख-दर्द सहना पड़ा था। आप मुझे

जो इच्छा हो कहें, परन्तु अपने पारिवारिक कार्य के अतिरिक्त समय में ११ बजे से ४ बजे तक इस लड़की को मैं भिक्षास्वरूप चाहती हूँ। इस थोड़े से समय के लिए इस लड़की को आप मुझे देंगे या नहीं—यह कहिये।'' यह कहते-कहते निवेदिता उस व्यक्ति के पैर के पास घुटने टेक कर बैठ गयीं। वह विचलित हो उठा। शीघ्रतापूर्वक निवेदिता को उठाकर घर के अन्दर से गिरिबाला को बुलाया तथा निवेदिता के हाथों उसे सौंप दिया। निवेदिता दोनों हाथों से पकड़कर कहने लगीं—'मेरी बच्ची, आज से प्रतिदिन तुम स्कूल जा पाओगी।' वे स्वयं उस दिन उसे गाड़ी में बिठाकर स्कूल ले आयीं। उसके बाद अपने घर में बुलाकर प्यार करके उसके शरीर पर एक बड़ा-सा चादर लपेटकर कहा, ''मेरी बच्ची, इस तरह चादर लपेटकर गाड़ी पर चढ़ेगी।''

* * * *

स्कूल में गर्मी की छुट्टी अथवा दूसरी किसी बड़ी छुट्टी होने के पहले निवेदिता बालिकाओं को भोजन करातीं। छात्राओं की संख्या कम न थी। फिर उनकी ग़रीबी। इसीलिए अच्छे भोजन का बन्दोबस्त करना उनके लिए सम्भव नहीं था। पहले से ही वे छात्राओं की संख्या गिन लिया करतीं। फिर यथाशक्ति फल-मिठाई आदि लाकर साल के पत्ते के छोटे-छोटे दोने बनाकर उसमें फल-मिठाई सजातीं। उन दोनों को एक टोकरी में उठाकर छात्राओं के पास जातीं तथा एक-एक करके सबको बाँटती। फिर खाली टोकरी हाथ में लेकर एक स्थान पर खड़ी रहतीं। खाना हो जाने पर बालिकाएँ एक-एक करके दोने उस टोकरी में डाल देतीं,

निवेदिता सहास्यवदन वह देखतीं। इसी तरह वे अपने छोटे अतिथियों की सेवा करतीं।

* * * *

निवेदिता वास्तव में स्कूल क़ी बालिकाओं की माँ थीं। हिन्दू विधवा नारी को खान-पान के सम्बन्ध में कई विधि-निषेधों का पालन करना पड़ता है। इसलिए कई बार विधवा बालिकाएँ बिना भोजन किये स्कूल चली आतीं। निवेदिता मुँह देखकर समझ जातीं कि किस बालिका का भोजन नहीं हुआ है। उसको खिलाने के लिए वे व्यग्र हो उठतीं। प्रफुल्ल देवी नामक एक अल्पवयस्क एक पड़ोसी विधवा बालिका निवेदिता की छात्रा थी। निवेदिता प्रत्येक एकादशी के दिन उसे सामने बिठाकर मिठाई एवं शरबत पिलातीं और खुद स्पर्श न करतीं। एक दिन स्कूल समाप्त होने पर उसे भोजन कराने की बात भूलकर वे जगदीश बसु के घर चली गयीं। अचानक उन्हें स्मरण हुआ कि वह एकादशी का दिन है एवं प्रफुल्ल को भोजन नहीं कराया गया। वे शीघ्र घर लौट आयीं तथा प्रफुल्ल को उसी समय अपने घर बुला लायीं। उसे खाने को देकर दुःख व्यक्त करते हुए कहने लगीं, "मेरी बच्ची, मैं भूल गयी थी, कैसा अन्याय ! तुम्हें खाने को नहीं दिया और मैंने खुद खा लिया ! कैसा अन्याय !"

* * * *

निवेदिता अपनी छात्राओं की नियमानुवर्तिता के ऊपर बहुत जोर देतीं। प्रतिदिन के कर्तव्यों को वे ठीक-ठीक पालन करें, इस

ओर उनकी तीक्ष्ण दृष्टि थी। इसके अलावा, स्वास्थ्य सम्बन्धी साधारण हिदायतों का ज्ञान उन्हें यत्नपूर्वक करातीं। वे देखतीं : उनकी सीधी-सादी छात्राओं के अन्दर कई गुण विद्यमान होने पर भी इस गुण विशेष का अभाव था। इसीलिए उस ओर वे विशेष जोर देतीं। जैसे, प्रत्येक छात्रा अपने वस्त्र एवं बिछावन अलग-अलग व्यवहार करे, इस ओर वे तीक्ष्ण नज़र रखतीं।

उनके कमरे में उनका बिछावन लगा रहता। कभी-कभी अति क्लान्त होने पर चन्द मिनटों के लिए वे अपने कमरे में विश्राम करतीं। एक दिन थोड़ा विश्राम हेतु कमरे में जाकर देखती हैं कि एक महिला छात्रा (ढाका की रहनेवाली थी, इसलिए सभी उसे ढाकाई माँ कहकर पुकारतीं) सोई हुई है। निवेदिता चुपचाप बाहर आ गयीं ताकि उसकी नींद न टूट जाए। लेकिन बाहर आकर वे एक छात्रा से बोलीं, "ढाकाई माँ आज बहुत क्लान्त हो गयी है। इसके बाद कुछ दिनों तक घर पर विश्राम करने के बाद ही वह पुनः स्कूल आए।" सभी समझ गये : 'निवेदिता रुष्ट हुई हैं। एक तो वे दूसरों के बिछावन पर सोना पसन्द नहीं करतीं। फिर स्कूल चलने के समय इस प्रकार सो जाने से वे और भी असन्तुष्ट हुई हैं।'

लेकिन प्रयोजन होने पर खुद इस नियम को तोड़ने में भी वे नहीं हिचकिचातीं। स्कूल की महामाया नामक एक छात्रा बहुत दिनों से बीमार एवं दुर्बल थी। उस अवस्था में भी वह स्कूल आती थी। अचानक एक दिन वह बहुत बीमार पड़ गयी—उसके मुँह से खून निकलने लगा। यह देखते ही निवेदिता ने उसे शिशु की तरह गोदी में उठाकर शीघ्रतापूर्वक अपने बिछावन पर सुला

दिया तथा डॉक्टर को बुलाने भेजा। स्कूल की छुट्टी होने तक अपने बिछावन पर सुलाकर उसकी सेवा-शुश्रूषा की। बाद में सावधानीपूर्वक उसे घर भेज दिया गया।

बाद में मालूम हुआ कि महामाया को यक्ष्मारोग हुआ है। निवेदिता एवं क्रिस्टीन ने उसकी यथाशक्ति चिकित्सा कर उसे निरोग करने की चेष्टा की। पुरी में घर किराये पर लेकर माँ एवं भाई के साथ उस लड़की को रखकर चिकित्सा की व्यवस्था की गयी। उनके साथ वे रहकर उसकी सेवा करते। इतना करने पर भी उसे बचाना सम्भव नहीं हुआ।

* * * *

स्कूल की बालिकाओं के प्रति निवेदिता के प्रेम की कोई सीमा नहीं थी। साथ ही उनपर शासन करने में भी वे कुण्ठित नहीं होतीं। कोई लड़की यदि कोई गलती करती तो वे इतनी कठोर दृष्टि से उसकी ओर देखतीं कि उसीसे उसको दण्ड मिल जाता। तथा कुछ देर बाद ही पहले की तरह स्नेहपूर्वक बातचीत करतीं। जब वे पढ़ातीं तो ऐसा नियम बना दिया था कि जिस लड़की से प्रश्न पूछा जाएगा, उसके अतिरिक्त कोई अन्य जवाब नहीं देगी। एक दिन पढ़ाते-पढ़ाते उन्होंने एक लड़की से कुछ पूछा। एक दिन दूसरी छात्रा निर्झरिणी सरकार ने तुरन्त उत्तर दे दिया। निवेदिता ने उसकी ओर एक बार केवल देखा। लड़की उसीसे भयभीत हो गयी तथा उसे और थोड़ा दण्ड देने के लिए निवेदिता ने कुछ दिनों तक उससे कोई प्रश्न नहीं पूछा। सिस्टर के पास इतना कठोर दण्ड पाकर वह लड़की रो उठी। कुछ दिनों बाद

किसी के घर पर पूजा हो रही थी, वहाँ निवेदिता को देखकर वह लड़की 'सिस्टर' कहकर दौड़कर उनके पास चली गयी। निवेदिता ने भी 'मेरी बच्ची' कहकर उसे आलिंगनबद्ध कर प्यार किया। उस लड़की ने आनन्दपूर्वक अपने घर लौटकर अपनी माँ से कहा, "माँ, आज सिस्टर कैसी सुन्दर दीख रही थी। वह मेरी ओर देखकर कैसे हँसी थीं ! उन्हें देखकर मुझे थोड़ा भी भय नहीं हुआ। लेकिन स्कूल में उन्हें देखकर कभी-कभी इतना डर क्यों लगता है? उस समय वे मानो और कोई बन जाती हैं।"

* * * *

महीयसी निवेदिता का हृदय प्रेम से पूर्ण था। जिसे कोई प्यार नहीं करता, उसके प्रति भी निवेदिता का अन्तःकरण करुणा से पूर्ण हो उठता। पहली बार जब वे जहाज से भारतवर्ष आ रही थीं, तो एक अंग्रेज युवक के साथ उनका परिचय हुआ। वह लड़का अनम्र तथा असंयमी था। उसके कारण परिवार में अशान्ति एवं समस्याएँ होती ही रहती थीं। इसी वजह से उसके माता-पिता ने उसे भारतवर्ष भेजकर उससे छुटकारा पाना चाहा। जहाज के यात्रिगण थोड़े ही समय में उससे परेशान हो गये। कोई भी उससे मिलना नहीं चाहता। निवेदिता के मन में सहानुभूति उत्पन्न हुई। हतभाग्य, विताड़ित लड़के को एकान्त में बुलाकर उससे बातचीत की। अपनी सोने की घड़ी उसे उपहार में देकर कहा—उनका विश्वास है कि वह लड़का निश्चय ही नये सिरे से अपने भविष्य का निर्माण करेगा। उसी विश्वास के प्रतीकस्वरूप उन्होंने अपनी घड़ी उसे उपहार में दी। वह घड़ी ही उनके पास एकमात्र मूल्यवान

वस्तु थी। निवेदिता की माँ ने उनके जन्मदिन पर उन्हें वह उपहार में दिया था। उस लड़के ने वास्तव में नये सिरे से अपना जीवन आरम्भ किया। निवेदिता ने अपने देहान्त के एक वर्ष पहले उस लड़के की माँ के द्वारा लिखित एक पत्र से यह जाना था। उसकी माँ ने लिखा था—सुदूर दक्षिण आफ्रिका में मृत्यु के ठीक पहले उसने निवेदिता को अत्यन्त श्रद्धा के साथ याद किया था।

केवल मानव ही नहीं, जीव-जन्तुओं के प्रति भी उनकी करुणा का अभाव नहीं था। स्कूल की घोड़ा-गाड़ी पर वे साधारणतः चढ़ना नहीं चाहतीं। पूछने पर बतातीं—घोड़े को कष्ट होगा। 'प्रवासी एवं मॉडर्न रिव्यू' पत्रिका के सम्पादक रामानन्द चट्टोपाध्याय पहली बार निवेदिता से मिलने के लिए घोड़ा गाड़ी से आए। उनके आने का समाचार पाते ही निवेदिता तुरन्त बाहर आ गयीं। प्राथमिक शिष्टाचार के बाद ही उन्होंने सईस से दोनों घोड़ों को खाने तथा विश्राम देने के लिए कहा। साथ ही सईस से भी पूछा कि उसका भोजन हुआ है या नहीं।

उद्बोधन में एक बार एक बिल्ली बहुत परेशान कर रही थी। गोलाप माँ ने उसे बाहर फेंकने के लिए गले पकड़कर उठाया। निवेदिता यह देखते ही चिल्लाने लगी, "गोलाप माँ ! मृत्यु, मृत्यु !" उत्तेजना में बंगला भाषा शीघ्रता से बोलने में असुविधा हो रही थी, इसलिए किसी प्रकार उन्होंने यह समझा दिया कि उस तरह फेंकने पर बिल्ली मर जाएगी।

* * * *

सन् १९०६ ई. के जुलाई महीने के मध्य भाग में दुःसंवाद

आया कि पूर्व बंग में दुर्भिक्ष हुआ है। तुरन्त बेलुड़ मठ से कुछ संन्यासी एवं ब्रह्मचारियों को उस अंचल में सेवाकार्य हेतु भेजा गया। क्रमशः दुर्भिक्ष की भयावहता की खबर कोलकाता पहुँचने लगी। निवेदिता वहाँ जाने के लिए अधीर हो उठीं। उनका स्वास्थ्य उस समय अच्छा नहीं था। कुछ दिन पहले 'ब्रेनफिवर' से आक्रान्त हुई थीं। फिर भी सबों का निषेध अमान्यकर वे सितम्बर के प्रारम्भ में दुर्भिक्ष-पीड़ित अंचल में उपस्थित हुईं। त्राणकार्य में संलग्न संन्यासी, ब्रह्मचारी एवं स्वयंसेवकों के साथ त्राणकार्य में कूद पड़ीं। दीर्घ समय तक वहाँ रहकर उन्होंने लोगों की सेवा की। केवल इतना ही नहीं, ग्राम्य रमणियों के साथ वे एक हो गयीं। उन लोगों ने भी उन्हें अपना आत्मीय समझकर स्वीकार किया था तथा अपनी दुःख-दुर्दशा की बातें दिल खोलकर उनसे कहतीं। वे उन लोगों की वास्तविक हितैषी थीं—यह समझने में उन्हें समय नहीं लगा। घर-घर जाकर वे सबकी खबर लेतीं। ग्रामीण लोगों की दुःख-दुर्दशा से परिचित होने के साथ ही वे उनकी महत्ता का भी परिचय पाकर मुग्ध होतीं। किसी एक गाँव से जब विदा हो रही थीं, तो गाँव की महिलाएँ नदी के तीर तक उन्हें विदा करने आयी थीं। नाव जब काफी दूर चली गयी, तब निवेदिता ने देखा कि महिलाएँ प्रार्थना की मुद्रा में खड़ी हैं। अपने दुःख की कोई सीमा नहीं, फिर भी वे लोग उनके कल्याण के लिए ईश्वर से प्रार्थना कर रही हैं। निवेदिता की आँखों में आँसू भर आए। इस दुर्भिक्ष के भयावह रूप ने निवेदिता के मन पर कितना आघात किया था, यह उन्होंने 'famine & flood' नामक अपने निबन्ध में व्यक्त किया है। दुर्भिक्ष-सेवा से लौटने के साथ ही

निवेदिता बहुत बीमार पड़ गयीं। दीर्घ दिनों तक मलेरिया से आक्रान्त होने के कारण उनका स्वास्थ्य एकदम खराब हो गया था।

* * * *

निवेदिता अपनी छात्राओं के साथ एक दिन म्यूज़ियम (संग्रहालय) देखने गयी थीं। म्यूज़ियम देखते-देखते निवेदिता अपनी छात्राओं के साथ एक कमरे में आयीं। उस कमरे में उस समंय सफेदी हो रही थी, साथ ही मरम्मत भी। कई मिस्त्री एवं मजदूर वहाँ कार्यरत थे। उनमें से एक मजदूर थककर एक किनारे कपड़ा बिछाकर सो गया था। उसके पास से जाते समय निवेदिता खूब आहिस्ते से चुपचाप चलने लगीं तथा उन्होंने मुखपर अँगुली रखकर इशारे से छात्राओं को भी बातचीत करने अथवा किसी प्रकार की आवाज़ करने से मना किया। छात्राएँ भी उनके पीछे-पीछे चुपचाप चलने लगीं ताकि मज़दूर की नींद न खुल जाए। परन्तु इतना सतर्क होने के बावजूद अचानक उसकी नींद टूट गयी तथा सामने निवेदिता को देखते ही वह भयभीत होकर 'मेम साहब' कहकर उन्हें सलाम कर उठ खड़ा हुआ। करुणामयी निवेदिता दुःखित होकर बारम्बार उसे फिर सो जाने के लिए कहने लगीं, परन्तु जितना ही वह उस मज़दूर को सो जाने के लिए कहतीं, वह उतना ही अधिक डरने लगा। इसके पहले किसी भी मेमसाहब का व्यवहार उसने नहीं देखा था तथा कोई मेमसाहब उसकी तरह एक नगण्य व्यक्ति को इस तरह अनुरोध कर सकती है, यह उसकी कल्पना के बाहर था। वह केवल यही सोचता था कि उसने बहुत बड़ा अपराध कर डाला है। वह एक अद्‌भुत दृश्य था !

* * * *

उनका हृदय जिस प्रकार कोमल था, उसी प्रकार आवश्यकता पड़ने पर वे कठोर होना भी जानतीं। वे चाहतीं कि उनकी छात्राएँ भी आवश्यकता पड़ने पर कठोर बनना सीखें। कोमलता तो उनमें जन्मजात थी ही। निवेदिता ने एक दिन कुछ पुस्तकों को साफ करने के लिए बाहर लाया। पुस्तकों में कीड़े लग गये थे। बाहर लाकर साफ करते ही कीड़े चारों ओर भागने लगे। वे चटपट उन कीड़ों को मारने लगीं। उन्हें मारते हुए कहा, "भारतवासी अति दयाशील जाति है। सिन्धु नदी के तट पर इस देश के शत्रु ग्रीक के राजा सिकन्दर जब आक्रमण करने आए, तब अतिथि नारायण समझकर भारतीय राजाओं ने उनका स्वागत किया। केवल पुरू नामक राजा उसको रोकने के लिए उठ खड़े हुए। ठीक उसी प्रकार, अर्जुन महावीर होने पर भी कुरुक्षेत्र युद्ध में पहले युद्ध करना नहीं चाहते थे। लेकिन भगवान ने उन्हें कायरता त्याग करने को कहा। यही है तुम्हारे शास्त्र की शिक्षा। कर्तव्य के सम्बन्ध में कभी-भी ममता मत करना। ये कीड़े प्राण-भय से भाग रहे हैं। किन्तु बचे रहने पर पुस्तकों को काटेंगे। इसलिए इन्हें मारना होगा। जो अशुभकारी है, ममता न कर उसे खत्म करना चाहिए।"

* * * *

एक दिन निवेदिता ने बालिकाओं से प्रश्न किया कि भारतवर्ष की रानी कौन हैं? छात्राओं ने उत्तर दिया, "महारानी क्वीन विक्टोरिया।" अंग्रेज शासित भारतवर्ष में इंग्लैण्ड की महारानी को स्वाभाविक रूप से वे अपनी रानी समझती थीं। छात्राओं के

उत्तर सुनकर निवेदिता क्रोध एवं दुःख से उत्तेजित हो उठीं। धिक्कारते हुए उन्होंने छात्राओं से कहा, "भारतवर्ष की रानी कौन हैं, यह भी क्या तुम लोग नहीं जानतीं?" उसके बाद खुद उत्तर देते हुए कहा, "इंग्लैण्ड की अधीश्वरी क्वीन विक्टोरिया कभी-भी तुम्हारी रानी नहीं हो सकतीं। तुम्हारी रानी सीता हैं। सदा के लिए भारतवर्ष की रानी सीता हैं।" बालिकाओं की शिक्षा के सम्बन्ध में स्वामीजी ने निवेदिता से कहा था कि सनातन धर्म का आदर्श— त्याग एवं सेवा से कभी-भी उनका अलगाव न हो। भारत की बालिकाओं को शिक्षित करने की परम आवश्यकता है, लेकिन यह आदर्श सर्वोच्च होना चाहिए। निवेदिता ने मन-प्राण से स्वामीजी के इस निर्देश का पालन किया था।

* * * *

एक दिन निवेदिता ने अपनी छात्राओं से पूछा, "महाभारत वर्णित नारियों में सबसे अधिक वीर कौन थीं?" छात्राओं ने अपनी-अपनी समझ के अनुसार उत्तर दिया। अधिकांश छात्राओं ने कहा—द्रौपदी, कोई-कोई बोलीं—सुभद्रा, कोई बोली—कुन्ती। निवेदिता आग्रहपूर्वक छात्राओं की ओर देखती रहीं कि कोई सटीक उत्तर दे सके। अन्ततोगत्वा उन्होंने स्वयं समझाया— धृतराष्ट्र पत्नी गान्धारीदेवी। उनकी पतिभक्ति तुलनाहीन थी। पति दृष्टिहीन होने के कारण आँखें रहने पर भी उन्होंने आजीवन स्वेच्छापूर्वक इस पृथ्वी के प्रकाश से अपने आपको वंचित रखा। परन्तु पति के अन्याय आचरण का उन्होंने कभी-भी समर्थन नहीं किया। अपनी सन्तान के प्रति उनकी असीम ममता थी, फिर भी

युद्धयात्रा के पहले दुर्योधन ने जब आशीर्वाद माँगा तो उन्होंने विजयी होने का आशीर्वाद उन्हें नहीं दिया। उन्होंने कहा, "जिसके पक्ष में धर्म है, विजय उसी की हो।" युद्ध में प्राणों से भी प्रिय पुत्रों की मृत्यु निश्चित जानकर भी वे अधर्म के पक्ष में नहीं जा सकीं।

* * * *

चित्रकार नन्दलाल बसु उस समय कलाविद्यालय के छात्र थे। एक दिन वे एवं सुरेन्द्रनाथ गंगोपाध्याय नामक उसी विद्यालय के अन्य एक छात्र निवेदिता के बोसपाड़ा स्थित घर गये। निवेदिता के बैठकखाने में वे लोग 'सोफा' के ऊपर बैठे। नीचे फर्श पर दरी बिछी हुई थी। निवेंदिता ने उन्हें कहा, "तुम लोग नीचे उतरकर बैठो।" वे लोग नीचे बैठ गये। पर मन ही मन बहुत असन्तुष्ट हुए। उन्होंने सोचा कि मेमसाहब ने उन्हें नीचे बैठने के लिए कहकर उनका अपमान किया है। निवेदिता कुछ समय तक उनकी ओर अपलक दृष्टि से देखती रहीं। फिर बोलीं, "तुम लोग भगवान बुद्ध के देशवासी हो, तुम लोगों को सोफा पर बैठे देखकर मुझे अच्छा नहीं लगता। तुम लोग अभी जिस प्रकार बुद्ध की तरह बैठो हो, उसे देखकर मुझे अच्छा लगता है।" उसके बाद आनन्दित होकर उन्होंने क्रिस्टीन को बुलाकर उनके साथ परिचय करवा दिया एवं चित्र के सम्बन्ध में बातचीत करने लगीं।

* * * *

उनके स्कूल की छात्राओं के पाठकक्ष में श्रीरामकृष्ण का एक चित्र टँगा हुआ था। सामने की दीवार पर पृथ्वी का मानचित्र लगा

हुआ था। एक दिन निवेदिता ने मानचित्र लाकर श्रीरामकृष्ण के चित्र के नीचे झुला दिया तथा बालिकाओं की ओर देखकर हँसते हुए बोलीं, "श्रीरामकृष्ण जगत्गुरु थे। जगत् का मानचित्र उनके श्रीचरणों के नीचे ही रहना चाहिए।"

* * * *

एक दिन निवेदिता ट्राम से जा रही थीं। साथ ही साहित्यकार दीनेशचन्द्र सेन भी थे। उसी समय एक अंग्रेज ट्राम में चढ़ा तथा निवेदिता को श्वेतांगिनी देखकर उनके पास बैठने लगा। निवेदिता अत्यन्त रुष्ट होकर उसकी ओर देखने लगीं। अंग्रेज सर नीचा कर दूसरी जगह जाकर बैठा। निवेदिता इच्छापूर्वक दीनेशबाबू की ओर सरककर बैठीं तथा उनके साथ हँस-हँसकर बातें करने लगीं। उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया कि अंग्रेज नहीं, बल्कि अश्वेतकाय भारतवासी ही उनका आत्मीय है।

अंग्रेज जाति के लोगों के प्रति निवेदिता की जैसी चिढ़ थी, वैसी ही यदि कोई अंग्रेज के प्रति अनावश्यक भक्ति दिखाता, तो उसके प्रति वे बिगड़ जातीं। एक दिन यदुनाथ सरकार महाशय ऐसे ही एक इतिहासकार की प्रशंसा कर रहे थे। निवेदिता ने असन्तुष्ट होकर कहा, "उसकी बात मत कहें। वह एक अंग्रेज प्रशंसक है।"

* * * *

निवेदिता बुद्धगया से लौटी हैं। साथ में सपत्नीक जगदीशचन्द्र बसु तथा अन्य लोग भी हैं। गया स्टेशन पहुँचने पर निवेदिता

कहीं जाएँगी तथा बसुगण दूसरी ट्रेन से किसी और जगह जाएँगे। बसु की ट्रेन पहले आयी। दौड़-धूप करने पर भी कोई डिब्बा खाली नहीं मिला। अन्ततोगत्वा वे लोग एक प्रथम श्रेणी के डिब्बे में चढ़ने गये। उस कमरे में दो अंग्रेज थे। बसुगणों को भारतीय समझकर वे किसी भी तरह उन्हें उस डिब्बे में चढ़ने नहीं दे रहे थे। संगी लोग स्टेशन मास्टर के पास दौड़े। वहाँ पर लौटने पर उन्होंने देखा कि निवेदिता उन अंग्रजों को जोर से डाँट रही हैं। निवेदिता की डाँट खाकर उन्होंने दरवाजा खोल दिया। किसी तरह अन्तिम क्षणों में बसुगण ट्रेन में चढ़े। ट्रेन चलने लगी। फिर भी निवेदिता का क्रोध कम नहीं हुआ। इसी बीच उनकी ट्रेन भी आ गयी। उस ट्रेन में प्रथम श्रेणी के केवल दो डिब्बे थे। एक कमरे में एक भारतीय पुरुष था तथा दूसरे में एक अंग्रेज महिला। संगीगणों ने उन्हें अंग्रेज महिलावाले डिब्बे में चढ़ाना चाहा। निवेदिता ने इस पर भारी आपत्ति की तथा जिस कमरे में भारतीय पुरुष था, उसी डिब्बे में चढ़ीं। दरवाजा खोलकर भीतर जाते ही भारतीय सज्जन उठ खड़े हुए तथा अपने हुक्के को हटाकर बैठने की जगह बना दी। ट्रेन छोड़ने के समय निवेदिता ने अपने संगियों से कहा, "बर्बर अंग्रेज और सभ्य भारतीय में कितना अन्तर है—क्या यह तुमने देखा?"

* * * *

निवेदिता विश्वास करतीं कि भारतवर्ष का जागरण केवल राजनैतिक अथवा धार्मिक क्षेत्र में ही नहीं होगा, बल्कि विज्ञान, शिक्षा, साहित्य, इतिहास, शिल्प तथा सभी क्षेत्रों में होगा एवं

उसके लिए निवेदिता अपनी सारी शक्ति लगा रही थीं। विशेषकर राष्ट्र के जागरण हेतु शिल्प जागरण को वे अत्यावश्यक समझती थीं। अपने स्कूल की छात्राओं के लिए उन्होंने शिल्प-शिक्षा की व्यवस्था की थी।

बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में बंगाल में राष्ट्रीय धारानुरूप शिल्प-आन्दोलन की सूचना हुई थी एवं शीघ्र ही वह अखिल भारतीय शिल्प- आन्दोलन के रूप में परिणत हुआ था। हैवेल, अवनीन्द्रनाथ तथा कुमारस्वामी द्वारा यह आन्दोलन सूचित हुआ था। राष्ट्रीय धारानुरूप इस नये शिल्प आन्दोलन की प्राणकेन्द्र निवेदिता थीं। भारतीय शिल्प के अन्तरंग वैशिष्ट्यों की जानकारी निवेदिता ने स्वामी विवेकानन्द से प्राप्त की थी। सामयिक भारतीय शिल्पकार तथा शिल्पप्रेमिक उन विशिष्टताओं को नहीं जानते थे। अपने गुरु से प्राप्त यह शिल्प-दृष्टि निवेदिता ने प्रत्यक्ष रूप से हैवेल, अवनीन्द्रनाथ तथा कुमारस्वामी को प्रदान की थी। केवल इतना ही नहीं, कोलकाता कला-विद्यालय के नन्दलाल बसु, असितकुमार हलदार तथा सुरेन्द्रनाथ गंगोपाध्याय आदि प्रतिभावान छात्रों को राष्ट्रीय रीति के अनुसार शिल्पाभ्यास करने हेतु वे सब समय उत्साह एवं प्रेरणा प्रदान करतीं।

एक बार श्रीमती हेरिंहैम नामक एक विदेशी महिला शिल्पकार अजन्ता की चित्रलिपि की प्रतिलिपि करने भारत आयी थीं। प्रतिलिपि बनाने हेतु वे स्थानीय शिल्पकार की खोज में थीं। निवेदिता ने अवनीन्द्रनाथ के माध्यम से नन्दलाल बसु तथा असित हलदार को उक्त कार्य के लिए नियुक्त कर दिया। छात्र-शिल्पकारगण अजन्ता जाने पर भारतीय शिल्प के वास्तविक

स्वरूप को देख सकेंगे, इसी कारण उनका विशेष आग्रह था। उनके आने-जाने का व्यय तथा भोजन आदि की व्यवस्था निवेदिता ने स्वयं कर दी। उन लोगों के अजन्ता में रहते ही बसु-दम्पति के साथ निवेदिता स्वयं वहाँ उपस्थित हुईं। उनकी उपस्थिति ने छात्र-शिल्पकारों के उत्साह को और बढ़ा दिया। इस अनुभव से युवक शिल्पकारगण परवर्ती जीवन में बहुत लाभान्वित हुए थे। अजन्ता की शिल्पधारा के साथ परिचय होने के फलस्वरूप स्वदेशी शिल्प का वास्तविक स्वरूप कैसा होगा—इस सम्बन्ध में सुस्पष्ट धारणा उनके अन्दर पैदा हुई थी।

केवल प्रत्यक्ष प्रेरणा प्रदान करना ही नहीं, निवेदिता की सबसे बड़ी शक्ति उनकी लेखनी थी। विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में इन शिल्पकारों के शिल्प-कार्य सम्बन्धी लेखों को लिखे थे। उनकी शिल्प-रचना के समाचार को उन्होंने देश-विदेश के शिल्प प्रेमिकों के पास पहुँचा दिया था। राष्ट्रीय धारानुरूप यह जो शिल्प-आन्दोलन हुआ था, उसके प्रधान प्रचारक 'माडर्न रिव्यू' पत्रिका के सम्पादक श्री रामानन्द चट्टोपाध्याय थे। राष्ट्रीय शिल्प के सम्बन्ध में रामानन्द चट्टोपाध्याय की श्रद्धा का उन्मेष निवेदिता की प्रेरणा के कारण ही हुआ था। श्री चट्टोपाध्याय ने स्वयं यह स्वीकार किया है।

निवेदिता राष्ट्रीय शिल्प जागरण को इतना महत्व देतीं कि उन्होंने एक बार ओलि बुल को लिखा था : 'उनका सबसे अधिक प्रिय स्वप्न है राष्ट्रीय शिल्प-कला का पुनरभ्युदय एवं वे मानती हैं कि जब भारत में प्राचीन शिल्प-कला का पुनरुत्थान होगा, तभी भारत एक शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में जाग उठेगा।' इतिहासकार

यदुनाथ सरकार लिखते हैं : 'निवेदिता भारतीय शिल्प की एक बड़ी समर्थक थीं। भारतवासी का कोई भी मौलिक दान सर्वदा उनका समादर तथा उत्साह पाता। ... वे युवक शिल्पकारों के चित्रों की आलोचना करतीं, उनके गुण-दोषों को दिखा देतीं; वे अत्यन्त समझदार थीं। पाश्चात्य शिल्पों का उन्होंने बहुत अभ्यास किया था। भारतीय भावधारा के अनुगामी बंगाली शिल्पकारगण उनके विलक्षण निर्देश से विशेष लाभान्वित हुए थे। अजन्ता का चित्र उन्हें विभोर कर देता। ... अजन्ता के भित्ति चित्र में वे मूल भारतीय शिल्प की अभिव्यक्ति पाती थीं तथा एलिफेण्टा की त्रिमूर्ति के अन्दर हिन्दूधर्म की समन्वय भावना का रूपायन हुआ है—यह बात भी उन्होंने कही है।'

* * * *

सुविख्यात तमिल कवि सुब्रह्मण्य भारती के जीवन पर निवेदिता का विशेष प्रभाव पड़ा था। मात्र एक मुलाक़ात के दौरान ही उक्त कवि के जीवन में निवेदिता ने देशप्रेम की अग्नि प्रज्ज्वलित कर दी थी। जब सन् १९०५ ई. में कोलकाता काँग्रेस में योगदान करने सुब्रह्मण्य कोलकाता आये थे तो एक दिन वे स्वयं निवेदिता से भेंट करने गये। पहली मुलाक़ात में ही उनको लगा कि निवेदिता के अन्दर एक महाशक्ति विराजमान है। वार्तालाप के समय निवेदिता यह जान पायीं कि सुब्रह्मण्य विवाहित हैं। उन्होंने पूछा, "पत्नी को साथ क्यों नहीं लाये हो?" भारती ने कहा, "हम लोगों के समाज में पत्नी को प्रकाश्य सभा में जाने की रीति नहीं है।" यह बात सुनकर निवेदिता जल उठीं तथा बोलीं, "भारी

दुःख के साथ मैंने एक और भारतीय को देखा जो नारी को क्रीतदास (खरीदा हुआ गुलाम) के अलावा और कुछ नहीं समझता। तुम्हारी शिक्षा का क्या मूल्य है, यदि तुम अपनी नारी जाति को अपने स्तर तक उन्नीत न कर सको? किसी भी देश की अर्धांश जाति कैसे स्वाधीनता प्राप्त कर सकती है, यदि वह दूसरे अर्धांश को पराधीन बनाये रखे? आज से तुम अपनी पत्नी को अपने से अलग कुछ मत समझना। अपने हाथों को जिस प्रकार उठाते हो, उसे भी उसी प्रकार उठाकर रखना, उसे देवदूत समझकर उसकी स्तुति करना।" भारती अभिभूत हो गये। निवेदिता के निकट क्षमा प्रार्थना की तथा प्रतिज्ञा की कि उनके आदेशों का पालन अक्षरशः करेंगे।" विदाई के समय निवेदिता ने उन्हें आशीर्वाद देते हुए कहा, "वत्स, मन के अन्दर की सारी बाधाओं को दूर करो। जातिभेद, वर्णभेद आदि बर्बर भेदाभेदों का त्याग करो। हृदय में प्रेम उत्पन्न करो। देखोगे, इतिहास के पृष्ठों पर तुम दिव्य रूप से अंकित हो जाओगे।"

इस एकमात्र साक्षात्कार ने सुब्रह्मण्य भारती के हृदय में वास्तविक देशप्रेम का संचार कर दिया था। जातिभेद, नारी-पुरुष वैषम्य बोध सदा के लिए दूर कर दिया था। निवेदिता से मिलकर जब वे मद्रास लौटे, तो वे पूर्णतया रूपान्तरित व्यक्ति थे। इसके बाद देशात्मबोध के विस्फोटक कवि के रूप में उनका आत्मप्रकाश हुआ था। उसके बाद कभी-भी उन्होंने जातिभेद नहीं माना, समाज के सारे विधि-निषेधों की उपेक्षा कर ब्राह्मण होकर भी सभी श्रेणियों के लोगों के साथ आहारादि करते, नारियों को खूब मर्यादा देते, अपनी सहधर्मिणी को अपने सारे कार्यों में साथ

रखते, यहाँ तक कि उनका हाथ पकड़कर राह चलते। किसी की भी आलोचना आदि पर कान न देते। निवेदिता को भारती अपना गुरु समझते। अपने पहले काव्यद्वय को उन्होंने निवेदिता के नाम ही समर्पित किया था। पहले काव्य में उन्होंने लिखा है : 'मैं यह लघु ग्रन्थ अपनी शिक्षादात्री के श्रीचरणों में निवेदित करता हूँ; जिन्होंने मुझे भारतमाता की भावमूर्ति के दर्शन कराये थे एवं श्रीकृष्ण ने जिस प्रकार अर्जुन को विश्वरूप दिखाकर यथार्थ आत्मज्ञान प्रदान किया था, उसी प्रकार उन्होंने भी मेरे अन्दर देशात्मबोध का संचार किया था।' दूसरे काव्य में वे लिखते हैं : 'यह ग्रन्थ मैं भगवान विवेकानन्द की धर्मपुत्री सुश्री निवेदिता को समर्पित करता हूँ। किसी भी शब्द का उच्चारण किये बिना क्षणभर में उन्होंने देशमाता की सेवा का यथार्थ स्वरूप तथा आत्मोत्सर्ग की महिमा का ज्ञान मुझे करा दिया था।'

* * * *

जगदीशचन्द्र बसु के वैज्ञानिक प्रयोग में निवेदिता का अपरिसीम अवदान था। सन् १८९० ई. में जगदीशचन्द्र बसु के साथ निवेदिता का परिचय हुआ। उसके पहले ही जगदीशचन्द्र बसु एक विज्ञानी के रूप में परिचित हो चुके थे। लन्दन से डी.एस.सी प्राप्त कर चुके थे तथा लॉर्ड केल्विन आदि द्वारा उनकी गवेषणा प्रशंसित हो चुकी थी। इतना होने के बावजूद, केवल पराधीन देश के निवासी होने के कारण विश्व-विख्यात इस विज्ञान-प्रतिभा का हर कदम पर कैसा अपमान ! यह देखकर निवेदिता बहुत दुःखी हुई थीं। अतएव जगदीशचन्द्र बसु की सहायता करना वे अपना

पवित्र राष्ट्रीय-कर्तव्य समझतीं। ये मग्न वैज्ञानिक एकाधार में उनके सखा तथा सन्तान दोनों हो गये। जगदीशचन्द्र बसु उनसे दस वर्ष अधिक उम्र के होने पर भी निवेदिता ने अपने अनेक पत्रों में उन्हें 'शिशु' कहकर उल्लेख किया है। हजारों प्रतिकूलताओं के साथ युद्ध करते-करते डॉक्टर बसु जब मानसिक रूप से क्लान्त हो जाते, तब एक माता की तरह निवेदिता उन्हें उत्साह प्रदान करतीं। इसके अतिरिक्त, कई क्षेत्रों में सरकारी स्तर पर अपने प्रभाव का उपयोग कर वे जगदीशचन्द्र बसु की वैज्ञानिक-गवेषणाओं की बाधाएँ दूर करने की कोशिश करतीं। मिस मैक्लाउड तथा मिसेस ओलि बुल के निकट जगदीशचन्द्र बसु की प्रशंसा कर उन्हें भी उनके पास खड़ा कर दिया था तथा ये सब वे स्वामीजी का कार्य समझकर ही करतीं। वह जानतीं कि स्वामीजी भारत के पुनरुत्थान हेतु वैज्ञानिक शिक्षा को कितना गुरुत्व देते थे। सन् १९०१ ई. में रॉयल सोसाइटी ने जगदीशचन्द्र बसु के गवेषणा-लब्ध लेखों का प्रकाशन बन्द कर दिया। तब जगदीशचन्द्र ने निश्चय किया कि वे अपनी गवेषणा सम्बन्धी परिणामों को पुस्तकाकार में प्रकाशित करेंगे। उस समय से लेकर सन् १९०७ ई. तक जगदीशचन्द्र बसु की जो तीन विख्यात पुस्तकें प्रकाशित हुईं, उन सभी का निवेदिता ने न केवल सम्पादन ही किया, बल्कि उनकी अधिकांश भाषा भी निवेदिता की ही है। जगदीशचन्द्र के अन्यान्य लेखों के सम्बन्ध में भी यही बात सत्य है। उन पुस्तकों के प्रकाशन के बाद देश-विदेश की अनेक पत्रिकाओं में निवेदिता ने उन पुस्तकों तथा जगदीशचन्द्र के सम्बन्ध में लेख लिखे। कई स्थानों पर जगदीशचन्द्र के सम्बन्ध में उन्होंने भाषण भी दिये।

जगदीशचन्द्र को वे एक राष्ट्रीय सम्पदा समझती थीं। जगदीशचन्द्र की वैज्ञानिक गवेषणाओं में निवेदिता के अवदान की याद दिलाते हुए रवीन्द्रनाथ लिखते हैं : 'जगदीशचन्द्र ने भगिनी निवेदिता को अपने जीवन के सर्वाधिक संकटमय काल में अपने कार्य तथा रचनाओं में उत्साह प्रदान करनेवाली एक मूल्यवान सहायिका के रूप में पाया था। जगदीशचन्द्र के जीवन-इतिहास में इन महनीया नारी का नाम सम्मान के साथ लेने योग्य है।'

* * * *

निवेदिता की ऐकान्तिक इच्छा थी - भारतीय अर्थ की सहायता से भारतीयों के द्वारा एक विज्ञान-मन्दिर प्रतिष्ठित होगा, जहाँ भारतीय छात्रगण विज्ञान-साधना का अबाधित सुयोग प्राप्त करेंगे। इस सम्बन्ध में जगदीशचन्द्र के साथ अक्सर उनकी बातचीत होती। यही कारण है कि बसु विज्ञान-मन्दिर की प्रतिष्ठा के समय प्रवेशद्वार के निकट दीवाल पर निवेदिता की एक रिलिफ मूर्ति खुदाई कराकर जगदीशचन्द्र ने निवेदिता के अवदान के प्रति श्रद्धा ज्ञापित की है। जगदीशचन्द्र कहते : 'निवेदिता का स्वप्न ही मेरे विज्ञान-मन्दिर में रूपायित हुआ है।' डॉ. वशीश्वर सेन के संस्मरण से यह जानकारी प्राप्त होती है कि जगदीशचन्द्र के अनुरोध से निवेदिता की थोड़ी-सी भस्मास्थि भी उन्होंने उस रिलिफ मूर्ति के नीचे रख दी थी।

* * * *

निवेदिता की योद्धा सदृश मनोवृत्ति थी। सहज में ही उत्तेजित

हो जातीं तथा दूसरे ही क्षण शान्त भी। एक दिन अमृतबाजार पत्रिका के कार्यालय में पत्रिका के सम्पादक मोतीलाल घोष के साथ किसी सम्बन्ध में तर्क हो रहा था। तर्क करते-करते निवेदिता अति उत्तेजित हो उठीं एवं उसी अवस्था में निकल गयीं। दूसरे दिन पुनः पत्रिका कार्यालय में आकर छोटी लड़की की तरह हँसते-हँसते टूटी-फूटी बंगला भाषा में बोलीं, "मोतीबाबू, कल मैं बहुत दुष्ट हो गयी थी।" निवेदिता की सरलता से मुग्ध मोतीबाबू की आँखों में आँसू आ गये।

* * * *

रामकृष्ण संघ में श्रीरामकृष्ण, माँ सारदादेवी तथा स्वामी विवेकानन्द के बाद ही जिनका स्थान है, वे हैं स्वामी ब्रह्मानन्द। वे रामकृष्ण संघ के प्रथम संघाध्यक्ष थे। श्रीरामकृष्ण उन्हें अपना मानस पुत्र कहते। माँ सारदादेवी ने कहा है : 'आध्यात्मिकता में राखाल मुझसे भी बड़ा है।' रामकृष्ण संघ में 'स्वामीजी' कहने से जैसे स्वामी विवेकानन्द समझे जाते हैं, उसी प्रकार 'महाराज' अथवा 'राजा महाराज' कहने से स्वामी ब्रह्मानन्द समझे जाते हैं। ऐसे महाराज भी निवेदिता की प्रशंसा में पंचमुख थे। निवेदिता जब महाराज के पास जातीं, तब दोनों आपस में अधिक बातें नहीं करते। दोनों ही ध्यानस्थ होकर बैठे रहते। उसी से परस्पर का मनोभाव समझ जाते। राजा महाराज कहते, "निवेदिता नज़दीक आते ही मन हू-हू कर ऊपर उठकर अन्तर्मुख हो जाता है।"

* * * *

निवेदिता के साथ 'प्रवासी' पत्रिका के सम्पादक रामानन्द चट्टोपाध्याय की गाढ़ी मित्रता थी। यद्यपि 'प्रवासी' एक बंगला पत्रिका थी, फिर भी निवेदिता उसके बारे में खोज-खबर रखतीं तथा उन्होंने कहा था कि केवल बंगला ही नहीं, रामानन्दबाबू का प्रतिभालोक एक दिन अंग्रेजी भाषा में भी बिखरेगा, वे भारत के एक विख्यात सम्पादक होंगे। परवर्तीकाल में निवेदिता रामानन्दबाबू द्वारा सम्पादित 'मॉडर्न रिव्यू' पत्रिका की एक नियमित लेखिका थीं।

एक दिन वे अस्वस्थ रामानन्दबाबू को उनके घर देखने गयीं। वे सुदीर्घ श्वेत वस्त्र तथा अंग्रेजी जूते पहनकर गयी थीं। रोगी के कमरे के सामने उन्होंने जूते खोलकर रखे। एक यूरोपीय महिला को जूते खोलते देखकर सभी आश्चर्यचकित हो उठे। इस पर निवेदिता ने कहा, "मैं जानती हूँ कि जूते खोलने चाहिए।"

* * * *

निवेदिता की कल्पना के माध्यम से भारत का इतिहास जीवन्त हो उठता। एक दिन वे स्कूल की छात्राओं को अपने चित्तौड़ भ्रमण की कहानी सुना रही थीं। वे कह रही थीं, "मैंने पहाड़ पर चढ़कर पत्थर के ऊपर घुटने टेककर याद किया। अग्निकुण्ड के समक्ष पद्मिनीदेवी हाथ जोड़कर खड़ी थीं। मैंने आँखें मूँदकर पद्मिनीदेवी के अन्तिम चिन्तन को अपने मन के अन्दर लाने की कोशिश की।'— यह बोलते-बोलते वे निस्तब्ध होकर बैठी रहीं। वास्तव में वे मानो चित्तौड़ में पद्मिनी युग में पहुँच गयी थीं।

* * * *

एक प्राचीन मन्दिर देखने के लिए अपने संगियों को साथ लेकर निवेदिता ने एक बार एक गम्भीर वन में प्रवेश किया। रात हो गयी, लौटने का कोई उपाय नहीं था। निश्चित हुआ कि मन्दिर प्रांगण में ही रात बिताई जाएगी। अति आग्रह के साथ रात में उन्होंने जंगल के जीव-जन्तुओं को देखा। सुबह की किरण निकलने के पहले प्राचीन समय के पुण्यार्थी की तरह मन्दिर के सरोवर में स्नान कर आयीं। सूर्य की किरणें धीरे-धीरे वृक्षलताओं को भेदकर मन्दिर को नहला रही हैं—निवेदिता मुग्ध होकर देखती रहीं।

* * * *

भारतवर्ष निवेदिता के लिए एक पुण्यभूमि थी। उनके लिए भारतवर्ष का प्रत्येक मनुष्य पुण्यात्मा था। उनके यहाँ जो ग्वाला दूध देता उसने एक दिन उनसे धर्म सम्बन्धी कुछ उपदेश सुनना चाहा। उसकी बात सुनकर निवेदिता थोड़ी संकुचित हुईं। अपने आपको मानो वे अपराधी समझ रही थीं। बारम्बार ग्वाले को नमस्कार करते हुए वे बोलीं, "तुम भारतवासी हो, तुम मुझसे क्या उपदेश सुनना चाहते हो? तुम लोग क्या नहीं जानते हो? तुम श्रीकृष्ण के वंशधर हो, तुम्हें मैं प्रणाम करती हूँ।"

* * * *

बंगला भाषा निवेदिता को अतिप्रिय थी। बंगला भाषा की छोटी-छोटी बातें जब जिसके पास से सम्भव होता, वे सीख लेतीं। अपने स्कूल की बालिकाओं से भी कभी-कभी वे बंगला सीखतीं। उस समय उनका एक विनीत छात्रा जैसा भाव होता।

एक दिन एक बालिका स्लेट पर लकीर खींचते-खींचते बोली, "लाइन खींच रही हूँ।" 'लाइन' शब्द कान में प्रवेश करने के साथ ही निवेदिता उसके पास आकर बोलीं, "लाइन तो अंग्रेजी शब्द है, तुम अपनी भाषा में बोलो।" किन्तु लाइन का बंगला प्रतिशब्द उस बालिका को याद नहीं आया। सभी बोलने लगीं, "सिस्टर, हम लोग तो हमेशा लाइन ही बोलती हैं।" दुःख तथा नाराज़गी से निवेदिता का मुखमण्डल लाल हो गया। उन्होंने कहा, "तुम लोग अपनी भाषा भी भूल गयी हो।" अचानक एक बालिका को याद आ गया तथा वह बोली, "लाइन का प्रतिशब्द है—रेखा।" फिर निवेदिता के आनन्द की सीमा न रही। वे मानो खोयी हुई कोई चीज़ पा गयी हों तथा बारम्बार उच्चारण करने लगीं—'रेखा, रेखा, रेखा।'

* * * *

निवेदिता केदारनाथ तथा बद्रीनाथ तीर्थदर्शन हेतु सन् १९१३ ई. के ग्रीष्मकाल में गयी थीं। स्कूल की बालिकाओं के निकट वे अपने तीर्थभ्रमण की कहानी सुनातीं। उनकी इच्छा होती छात्राओं को भी अपने साथ लेकर भारतवर्ष के ऐतिहासिक तथा धार्मिक स्थानों को दिखलाएँ ताकि भारतवर्ष का वास्तविक स्वरूप उनके मन के अन्दर अंकित हो जाए। लेकिन अर्थाभाव के कारण वह सम्भव नहीं था। इसीलिए जब जहाँ जातीं, उसका वर्णन अपनी छात्राओं के निकट करतीं। इतनी सूक्ष्मता से वे वर्णन करतीं कि छात्राएँ मानो वर्णन के विषयवस्तु को स्पष्ट रूप से देख पातीं। बद्रीनारायण में अलकनन्दा नदी के तट पर उन्होंने एक दिन एक

बूढ़ी माँ को देखा था। उनके सम्बन्ध में बताते हुए वे छात्राओं से कह रही हैं, "वे स्नान कर आयी हैं, तब भी भीगा कपड़ा पहनी हैं। वे बूढ़ी हो गयी हैं, सिर के बाल सफेद हो गये हैं; किन्तु ठण्ड की कोई परवाह नहीं कर रही हैं। अलकनन्दा के सामने खड़ी होकर वे हाथ जोड़कर सूर्य को प्रणाम कर रही हैं। (ऐसा कहते-कहते खुद भी हाथ जोड़ लिये)। कैसा सुन्दर! कैसा अनुपम उनका मुखमण्डल! मैं आश्चर्यचकित होकर उनके मुख की ओर देखती रही।"

* * * *

निवेदिता बद्रीनाथ की ओर जा रही हैं। उन्होंने देखा दो बूढ़ी जा रही हैं। अचानक एक बूढ़ी पत्थर से चोट खाकर गिर गयी। निवेदिता ने दौड़कर उसको पकड़ा तथा उसके गिरने पर उन्होंने दुःख व्यक्त किया। बूढ़ी ने हँसकर कहा, "भगवान ही हमें पथ दिखाते हुए ले जा रहे हैं। उन्होंने जब कृपा करके दर्शन दिये हैं, फिर चिन्ता किस बात की।"

बद्रीनारायण के पथ पर दूसरी जगह एक बूढ़ी बर्फ के ऊपर से होकर निवेदिता के आगे-आगे जा रही थी। बर्फ पिघल गया था। बूढ़ी के पैर फिसल रहे हैं। निवेदिता को डर लग रहा था कि वह गिर जायेगी। निवेदिता ने पूछा कि वह उसकी सहायता ग्रहण करेंगी या नहीं, उसका हाथ पकड़ेंगी या नहीं। बूढ़ी मन्द-मन्द मुस्कुराई तथा अपनी लाठी टेकते हुए चली गयी। सभी जाति, धर्म तथा वर्ण के दल के दल तीर्थयात्री ईश्वर का नाम लेकर चल रहे हैं। तीर्थयात्रियों की उस ऐकान्तिक ईश्वरभक्ति तथा निर्भरता ने

निवेदिता को मुग्ध कर दिया। उन्होंने अनुभव किया : यही है शाश्वत भारतवर्ष का असली स्वरूप।

* * * *

बंगाल में रहने के कारण वहाँ के नानाविध पूजानुष्ठान तथा सभी प्रकार के पर्व-त्योहारों के प्रति निवेदिता का अति श्रद्धा का भाव था। प्रत्येक वर्ष स्कूल में धूमधाम से सरस्वती पूजा करतीं। ललाट पर होम का तिलक लगाकर आनन्दपूर्वक नंगे पाँव इधर-उधर दौड़ा करतीं। पूजा शब्द का उच्चारण करते ही मानो वे भाव-विह्वल हो जातीं।

अमृतबाजार पत्रिका के कार्यालय में एक बार महाप्रभु के जन्मोत्सव के अवसर पर उन्हें आमन्त्रित किया गया था। वे स्कूल से नंगे पाँव पैदल चलकर वहाँ गयी थीं। सीढ़ी पर चढ़ते-चढ़ते अति आग्रह तथा सरल भक्ति के साथ सभी को पूछ रही थीं, "पूजा कहाँ हो रही है, पूजा कहाँ हो रही है।" उनके भक्तिभाव को देखकर सबों ने मानो उसी समय पूजा की सार्थकता का अनुभव किया।

* * * *

भारतीय नारियों का स्वाभाविक माधुर्य, निःस्वार्थता, सर्वभूतों के ऊपर मातृभाव तथा अति स्वाभाविक त्यागशीलता को देखकर निवेदिता मुग्ध होतीं। सन् १९०० ई. में निवेदिता जब स्वामीजी के साथ भारत से पाश्चात्य गयी थीं, तब इंग्लैण्ड में अपने एक भाषण (फरवरी, १९०१ ई.) में कहा था, "पृथ्वी पर हिन्दू

गृहस्थ जीवन की तरह सुन्दर वस्तु शायद और कोई नहीं है। भारतीय नारियों का आदर्श प्रेम नहीं, त्याग है। इस आदर्श को अपरिवर्तित रखकर मैं हिन्दू नारियों को आधुनिक पाश्चात्य की उपयोगी शिक्षा देना चाहती हूँ।''

* * * *

बागबाजार मुहल्ले में अन्तःपुर की भारतीय नारियों के साथ घनिष्ठ रूप से मिलकर तथा सर्वोपरि श्रीमाँ सारदादेवी को देखकर भारतीय नारियों के सम्बन्ध में उन्हें एक उच्च धारणा हुई थी। एक दिन वार्तालाप के क्रम में स्वामी सारदानन्द ने कह डाला, ''हम लोगों की नारियाँ तो अज्ञ ...।'' निवेदिता ने उन्हें अपना वाक्य पूरा करने नहीं दिया। जोरपूर्वक बोल उठीं, ''भारतवर्ष की नारियाँ कभी भी अज्ञ नहीं हैं। परदेश (पाश्चात्य को वे परदेश कहतीं) की नारियों के मुँह से कभी किसी ने ऐसी बात सुनी है?

मद्रास में अपने एक भाषण में निवेदिता ने कहा था : 'भारत की महिलाएँ अशिक्षित तथा अत्याचारित हैं—यह अभियोग किसी भी प्रकार सत्य नहीं है। अन्यान्य देशों की अपेक्षा यहाँ नारियों के प्रति अत्याचार कम है। भारतीय नारियों का महान् चरित्र उसके राष्ट्रीय जीवन की एक सर्वश्रेष्ठ सम्पदा है। आधुनिकता की दृष्टि से वे अज्ञ अवश्य हैं, अर्थात् प्रायः कोई भी लिख नहीं सकती। अक्षर परिचय भी बहुत कम स्त्रियों को ही है। किन्तु इसी वजह से क्या वे अशिक्षित हैं? यदि वही हो, तो जो माताएँ, बड़ी माताएँ तथा नानियाँ अपने बच्चे-बच्चियों को रामायण, महाभारत, पुराण एवं नाना उपाख्यान सुनाती हैं, वे सब अशिक्षित कही जाएँगी

तथा वे ही यदि यूरोपीय उपन्यास तथा कुछ व्यर्थ की अंग्रेजी पत्रिका पढ़ पातीं तो अशिक्षित नहीं कही जातीं। यह क्या परस्पर विरुद्ध नहीं लगता है?

'वास्तव में अक्षर ज्ञान संस्कृति का परिचय नहीं है। भारतीय जीवन के साथ परिचित सभी लोग जानते हैं कि भारतीय पारिवारिक जीवन की मूल बात है—महत्व, भद्रता, परिच्छिन्नता, धर्मशिक्षा, हृदय तथा मन का उत्कर्ष और प्रत्येक भारतीय नारी के अन्दर ये गुण विद्यमान हैं। अतएव मातृभाषा नहीं पढ़ पाने तथा अपने हस्ताक्षर न कर पाने पर भी समालोचकगण जिस दृष्टि से उन्हें देखते हैं ... यथार्थ दृष्टि में भारतीय नारियाँ अपेक्षाकृत बहुत अधिक शिक्षित हैं।'

* * * *

निवेदिता, क्रिस्टीन, रवीन्द्रनाथ, जगदीशचन्द्र बसु, अबला बसु, सब एक साथ बोधगया घूमने गये थे। प्रतिदिन संध्या समय बोधिवृक्ष के नीचे बैठकर निवेदिता ध्यान करतीं। बोधिवृक्ष के कुछ दूर पर एक गोल पत्थर के ऊपर एक वज्र-चिह्न खुदाई किया हुआ था। उस चिह्न को देखकर निवेदिता ने एक दिन कहा, "भारतवर्ष के राष्ट्रीय चिह्न के रूप में इसे ग्रहण करना चाहिए। दूसरों के द्वारा पूछे जाने पर उन्होंने कहा, "इसका अर्थ यह है कि जब कोई सारी मानवजाति के कल्याण-साधन हेतु सर्वस्व त्याग करते हैं, तब वे इस वज्र के समान ही शक्तिशाली होकर देवता का निर्दिष्ट कार्य करते हैं। भारत का मूल आदर्श है—त्याग। इसीलिए वज्र भारत का राष्ट्रीय चिह्न होना चाहिए।

वज्र निवेदिता को दधीचि के आत्मत्याग की बात स्मरण करा देता। देवताओं के प्रयोजन से दधीचि ने स्वेच्छापूर्वक देहत्याग किया था। उनकी अस्थि से निमित्त वज्र द्वारा देवताओं ने अपने शत्रु वृत्रासुर का वध किया था। निवेदिता ने भारतवर्ष के लिए जिस राष्ट्रीय झण्डे की परिकल्पना की थी, उसमें भी वज्र था। परवर्ती काल में निवेदिता की इच्छा को सम्मान देते हुए आचार्य जगदीशचन्द्र बसु ने 'बसु-विज्ञान-मन्दिर' के शीर्ष पर इस वज्र चिह्न को स्थापित किया था।

* * * *

बोधगया के निकट ही उरूविल्ला गाँव है। उसी गाँव में सुजाता का घर था। सुजाता द्वारा प्रदत्त खीर खाकर बुद्धदेव ने ध्यान में बैठकर बुद्धत्त्व की प्राप्ति की थी। इसीलिए सबको साथ लेकर निवेदिता एक दिन उरूविल्ला गाँव गयीं।

यद्यपि वहाँ सुजाता के घर का कोई चिह्न नहीं है, फिर भी निवेदिता आनन्द से अधीर हो गयीं। मिट्टी का एक ढेला अत्यन्त श्रद्धापूर्वक अपनी छाती से लगा लिया तथा कहा, "यह सारा स्थान पवित्र है।"

* * * *

जिस दिन बोधगया से प्रस्थान करेंगी, सारी रात निवेदिता रोयी थीं। बौद्धयुग के गौरव की बातें उन्हें याद आयी थीं तथा साथ ही याद आयी भारत की वर्तमान हीन अवस्था की बात भी। जिस महाजागरण ने एक दिन भारत को विश्व का गर्व तथा एशिया

के केन्द्रस्थल के रूप में परिणत किया था, पुनः कब भला वही जागरण होगा? पुनः कब वही शक्ति, वही उत्साह लौट आएगा? कब भारतवासी अपने महान् उत्तराधिकार के सम्बन्ध में सचेतन होंगे? यही सब सोच वे असीम वेदना का अनुभव कर रही थीं।

* * * *

राष्ट्रीयता सम्बन्धी निवेदिता की सर्वश्रेष्ठ रचना है : 'वेब ऑफ इण्डियन लाइफ'। पुस्तक के प्रकाशन के साथ-साथ देश-विदेश में हलचल मच गयी। भारतीय संस्कृति की गम्भीर तथा श्रद्धापूर्ण व्याख्या इस पुस्तक में है। पाश्चात्य विद्वानों ने उस समय तक भारतीय सभ्यता तथा संस्कृति की जितनी अपव्याख्याएँ की थीं, इस पुस्तक में निवेदिता ने उनका समुचित उत्तर देने की कोशिश की है।

निवेदिता यह मानती थीं कि यह पुस्तक उनके द्वारा नहीं बल्कि स्वामीजी के द्वारा लिखित है। भारतवर्ष के जिस रूप को स्वामीजी ने उनकी आँखों के सामने उद्घाटित किया था, उसी रूप को उन्होंने इस पुस्तक में लिपिबद्ध भर किया है। पुस्तक के समर्पण स्तम्भ में निवेदिता ने निम्नलिखित शब्दों को लिपिबद्ध किया है जो स्वामीजी को अति प्रिय था : 'वाह गुरुजी की फतह' —गुरु की जय हो। किसके उद्देश्य से निवेदिता ने यह जयकार की है, यह समझना बहुत सरल है। पुस्तक की भूमिका रवीन्द्रनाथ ने लिखी है। पुस्तक प्रकाशित होने के बाद अन्तरंग संगी तथा विवेकानन्द की शिष्या मिस मैक्लाउड को निवेदिता ने लिखा था —'तुम जानती हो कि मेरी पुस्तक प्रकाशित हुई है। मेरा विश्वास

है तुम भी अनुभव करोगी कि यह पुस्तक वास्तव में उनके (स्वामीजी) द्वारा लिखित है तथा यही उनकी अन्तिम रचना नहीं होगी। ... तुम केवल यह बोलो कि इस पुस्तक को तुम उनकी पुस्तक के रूप में पहचान पायी हो। बोलो कि इससे वे प्रसन्न हैं तथा वे इसे आशीर्वाद कर रहे हैं। इससे अधिक मैं और कुछ नहीं चाहती।'

मिस मैक्लाउड को लिखित एक और पत्र में निवेदिता लिखती हैं : 'यदि तुम पुस्तक की गम्भीरता में प्रवेश कर स्वामीजी के दर्शन कर सको तो मैं अति आनन्दित होऊँगी। ... सब कुछ स्वामीजी ! सब कुछ स्वामीजी ! सब कुछ स्वामीजी ! उसके अतिरिक्त मेरा कुछ भी नहीं है। कल्पना करो, उस समय वे लन्दन नहीं आते। (जब मार्गरेट ने स्वामीजी के प्रथम दर्शन किये।) तब जीवन मुण्डहीन कबन्ध हो जाता क्योंकि मैं सर्वदा यह जानती थी कि किसी विशेष उद्देश्य हेतु मैं प्रतीक्षा कर रही हूँ। मैं सदा अपने आप से कहती—आह्वान ज़रूर आएगा। आह्वान आया भी ! ... अभी पुस्तक की ओर देखती हूँ तथा बोलती हूँ : 'यदि वे नहीं आते।' ... यदि वे हिमालय के शिखर पर बैठकर ध्यान करते। ... तो मैं कभी यहाँ (भारतवर्ष) नहीं आती !'

* * * *

स्वामीजी के सम्बन्ध में निवेदिता कहती हैं : जिस दिन मैं भारतवर्ष पहुँची, उस दिन से लेकर गुरुदेव के जीवन के अन्तिम दिन तक मैंने उनके अन्दर एक असह्य वेदना का अनुभव किया है। वह वेदना किसी दूसरी चीज़ के लिए नहीं : केवल मातृभूमि

के लिए चिन्ता। स्वामीजी के उस अलौकिक भारतप्रेम का उत्तराधिकार उनकी मानस कन्या के अन्दर भी मूर्त हो उठा था। 'रामकृष्ण-विवेकानन्द' की निवेदिता के लिए रामकृष्ण-विवेकानन्द तथा भारतवर्ष एकाकार हो चुके थे। उनकी सारी सत्ता भारतमाता हो चुकी थी। भारतवर्ष के अतिरिक्त उनका अपना कोई अस्तित्व नहीं था। भारतवर्ष के गर्व एवं लज्जा को वे अपना गर्व तथा लज्जा समझतीं। गुरुदेव ने उनसे प्रत्येक भारत सन्तान की जननी, सेविका तथा बन्धु होने को कहा था। वही तथा उससे भी कहीं अधिक वे हो उठी थीं—छोटे या बड़े भारतवासी के निकट। और कोई भी विदेशिनी भारतवर्ष के धर्म, संस्कृति, दुःख तथा स्वप्न को इस तरह अपना समझकर ग्रहण नहीं कर पायी और न ही कोई विदेशिनी भारत के जनसाधारण के प्राणों की आशा-आकांक्षा, भारत की अन्तरात्मा के सत्यस्वरूप को इतनी सूक्ष्मता के साथ पहचान ही पायी। वस्तुतः भारत के लिए उनका आत्मनिवेदन इतना आन्तरिक, सर्वांगीण तथा परिपूर्ण था कि उन्हें विदेशिनी कहने में ही अपराध का अनुभव होता है। वे कभी-भी 'भारत की आवश्यकता', (भारत की नारी) शब्दों का प्रयोग नहीं करतीं। वे कहतीं : 'हम लोगों की आवश्यकता', 'हम लोगों की नारी।' भारत को कहतीं : 'स्वदेश' तथा इंग्लैण्ड को कहतीं 'परदेश'। इसीलिए निवेदिता थी 'भारत की निवेदिता।' श्रीमाँ सारदादेवी भी यही कहतीं 'निवेदिता यहाँ की है। केवल उनके (अर्थात् श्रीरामकृष्ण) भाव एवं सन्देश को विदेश में प्रचारित करने हेतु विदेश में जन्म-ग्रहण किया था।'

निवेदिता की वाणी

● श्रीरामकृष्ण एवं स्वामीजी—ये दोनों जीवन ही भारत के अखण्ड सत्य हैं। इन दोनों महाजीवनों के अन्तर्गत ही समग्र भारत की एकता निहित है। भारतवर्ष इन दोनों महापुरुषों को हृदय में धारण करेगा—इसी की सबसे अधिक आवश्यकता है।

● मैं विश्वास करती हूँ—भारतवर्ष एक अखण्ड, अविभाज्य देश है। एक आवास, एक स्वार्थ, एक सम्प्रीति के ऊपर ही राष्ट्रीय ऐक्य गठित है। मैं विश्वास करती हूँ—भारतवर्ष का वर्तमान उसके अतीत के साथ घनिष्ठ रूप से सम्बद्ध है तथा उसके सामने एक गौरवमय भविष्य जाज्ज्वल्यमान है। विश्वजनीन भावों के अंशस्वरूप राष्ट्रीय भावों को आत्मगत करना होगा तथा उसके लिए प्रयोजनानुसार आचारों के बन्धन को तोड़ना होगा। परन्तु ऐसा व्यक्तिगत स्वार्थ के लिए नहीं होना चाहिए। स्वार्थरहित मानव मानो वज्र के समान है। उस निःस्वार्थता की साधना हमें करनी होगी ताकि हम देवता के हाथों वज्र हो सकें। कैसे? यह प्रश्न हमारा नहीं है। लेखा-जोखा भी हम लोगों के लिए नहीं है। हम लोगों के लिए है केवल वेदी पर आत्म-बलिदान।

● जब कोई मानवजाति के कल्याणार्थ सम्पूर्ण आत्मदान करता है, तब वह देवता के हस्तस्थित वज्र के समान शक्तिसम्पन्न हो जाता है। अशिक्षित असहाय एक मानव के ऊपर अत्याचार करना सहज है, किन्तु सचेतन, संगठित दस हजार मनुष्य के

ऊपर अत्याचार करना कठिन है। स्वयं चिन्तन कर मार्ग का सन्धान करो। अपने चिन्तन को कार्य में परिणत करो। अतीत की भ्रान्तियों से शिक्षा ग्रहण करो।

● जीवन, जीवन, जीवन मैं जीवन चाहती हूँ तथा जीवन का एकमात्र पर्यायवाची शब्द है स्वाधीनता। वैसा नहीं होने पर मृत्यु ही श्रेय है।

● ऐसे जीवन की धारणा करो जिसमें समस्वार्थ, समप्रयोजन तथा पारस्परिक सहायता का कर्तव्यबोध उद्‌बुद्ध हो। मैं प्रेम करती हूँ दुःख से, संग्राम से, आत्मबलिदान से। उसका अधिकार हमें प्राप्त हो।

● प्रत्येक सुशिक्षित नर-नारी अपने राष्ट्र के लिए, सारी मानवजाति के इतिहास में श्रेष्ठ स्तम्भस्वरूप हैं। देश को शरीर, मन से बलिष्ठ देशप्रेमियों की आवश्यकता है। केवल बलिष्ठ देशप्रेमी ही देश का उत्थान कर सकेंगे। वही वीर है जो युद्ध करता है, युद्ध करना पसन्द करता है। युद्ध करो, युद्ध करो, केवल युद्ध करो। परन्तु उसमें नीचता अथवा कटुता न रहे। जब संग्राम का आह्वान आएगा, तब सोना मत। संकट के समय भयभीत होना, निरापत्ता के लिए लालायित होना कपट आध्यात्मिकता है। आध्यात्मिकता के छद्मवेश को धारणकर घृणित स्वच्छन्दता का सन्धान करनेवाला, जीवन के युद्धक्षेत्र से कापुरुष की तरह पलायन करनेवाला देशप्रेम है—कपट देशप्रेम।

● राष्ट्रीयता को वास्तविक रूप देने हेतु आवश्यक है सभी बच्चों के समक्ष उसके देश के इतिहास को प्रत्यक्ष माध्यम बनाना।

● न्याय का पथ अवरोध कर जो खड़े हैं, वे सावधान हो जाएँ।

सारे इतिहासों में ऐसे लग्न उपस्थित होते हैं, जब निर्मम निष्ठुर लोग काँप उठते हैं, ईश्वर की करुणा हेतु प्रार्थना कर चीत्कार कर उठते हैं, परन्तु देखते हैं, वह उनके लिए अदृश्य है।

● छात्र लोग तीर्थयात्री की तरह भारत के विभिन्न स्थानों का भ्रमण करें क्योंकि स्थान तथा मनुष्य के सम्बन्ध में प्रत्यक्ष अभिज्ञता की ही आवश्यकता है। हम लोग क्या अपने बाल-बच्चों के अन्दर परदुःख-कातरता प्रस्फुटित नहीं कर सकते? यह परदुःख-कातरता ही सभी मनुष्यों के दुःख, देश की दुरवस्था तथा वर्तमान में धर्म कितना विपदग्रस्त है, यह जानने हेतु आग्रह प्रदान करेगा। यह ज्ञान होने के साथ ही देश में अनेक शक्तिशाली कर्मवीरों का जन्म होगा, जो केवल कर्म के लिए ही कर्म करेंगे तथा स्वदेश एवं स्वदेशवासियों की सेवा के लिए मृत्यु को भी आलिंगन करने हेतु प्रस्तुत रहेंगे।

● नारियाँ ही सभी देशों में नीति तथा सदाचारों की आदर्श रक्षाकर्त्री होती हैं।

शिक्षा

● शिक्षा ही तो भारतवर्ष की समस्या है। कैसे प्रकृत शिक्षा, राष्ट्रीय शिक्षा की व्यवस्था हो सकती है, यूरोप के निकृष्ट अनुकरण के बदले भारतवर्ष की एक प्रकृत सन्तान के रूप में तुम लोगों का गठन किया जा सके—यही समस्या है। तुम लोगों की शिक्षा होगी —हृदय, आत्मा तथा मस्तिष्क का उन्नति साधन। तुम्हारी शिक्षा का लक्ष्य होगा—परस्पर के बीच एवं अतीत तथा वर्तमान जगत् के बीच साक्षात् योगसूत्र स्थापन करना। शिक्षा का अर्थ बाहरी

ज्ञान तथा शक्ति संचय करना नहीं, अपने भीतर की शक्ति को सम्यक् रूप से विकसित करने की साधना। भारतवर्ष की शिक्षा की भित्ति है—त्याग और प्रेम। आत्मत्याग के द्वारा ही प्रेम का जन्म होता है तथा प्रेम के द्वारा ही त्याग की उत्पत्ति एवं प्रसार होता है। त्याग का अर्थ निःस्वार्थ होना नहीं है। अक्षयधन से धनी होने का मार्ग ही त्याग है। त्याग का तात्पर्य संसार के भय से पलायन करना नहीं है, बल्कि जगत्-समाज में विजयी होने का एकमात्र उपाय ही आत्मत्याग है। किन्तु वह त्याग स्वार्थबोधहीन होना चाहिए। जो त्याग के पथ पर अनजाने में भी अभिमान अथवा कामना की छाया का स्पर्श करता है, उसका अमूल्य दान भी मुट्ठीभर धूलदान की तरह तुच्छ हो जाता है।

● शिक्षार्थी को याद रखना होगा कि उसका उद्देश्य अपनी उन्नति और कल्याण ही नहीं है, बल्कि जन-देश-धर्म के प्रति दृष्टि रखकर ही वह शिक्षादान करे। वही शिक्षार्थी को यथार्थ मनुष्य बनाकर स्वदेशसेवा में नियुक्त करता है। यह स्वदेशप्रेम जब हृदय में दृढ़ रूप से अंकित होकर देश की संस्कृति तथा आदर्श को गर्व के साथ श्रद्धा करना सिखाता है, तभी दूसरी जाति के महत्व तथा उच्च आदर्श के यथार्थ मर्म को ग्रहण करना सम्भव होता है। अन्यथा आन्तर्जातिकता की दुहाई देकर दूसरी जाति का अनुकरण चरित्र को निकृष्ट कर देता है।

स्त्रीशिक्षा

● आदर्श के प्रति ध्यान रखकर वर्तमान परिस्थिति हेतु उपयोगी शिक्षा की व्यवस्था करनी होगी। विदेशी शिक्षा पद्धति का अनुकरण

करने से शिक्षा का यथार्थ फल मिलना असम्भव है। अतीत की हिन्दू नारियाँ क्या हम लोगों की लज्जा का कारणस्वरूप थीं कि उनके प्राचीन सौन्दर्य एवं माधुर्य, नम्रता एवं धर्मभाव, सहिष्णुता, प्रेम एवं करुणा की शिशुसुलभ गम्भीरता को त्यागकर हम पाश्चात्य के नाना तथ्य-संग्रह करने में व्यग्र होंगे जो सामाजिक उद्यमता का प्राथमिक फल है ! ... जो शिक्षा बुद्धि का उन्मेष करते हुए नम्रता तथा कमनीयता को नष्ट कर दे वह प्रकृत शिक्षा नहीं हो सकती। ... अतएव भारतीय नारियों के लिए एक ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है जिसका उद्देश्य होगा मानसिक तथा आध्यात्मिक वृत्तियों में पारस्परिक सहयोगिता का विकास करना।

● इस आदर्श के निर्वहन में शायद जगत् के अन्यान्य देशों की अपेक्षा भारतवर्ष का सौभाग्य ही अधिक है। अन्य सभी देशों की अपेक्षा भारतमाता ही विशेषरूप से महीयसी नारियों की जननी है। इतिहास, साहित्य जिस किसी भी ओर दृष्टिपात क्यों न करें, सर्वत्र ही उनकी महिमामय मूर्ति उद्भासित है। ... भारत के इतिहास एवं साहित्य में नारीत्व का राष्ट्रीय आदर्श विराजमान है। जो शिक्षा शुरू से अन्त तक उस आदर्श को उच्चासन प्रदान नहीं करती, उसकी गणना कभी-भी भारतीय नारियों की वास्तविक शिक्षा के रूप में नहीं हो सकती।

राष्ट्रीयता

● वर्तमान में प्रकृत कार्य हैं—सर्वविध तात्पर्य एवं अर्थबोध के साथ ही भारत में सर्वत्र 'राष्ट्रीयता' शब्द का प्रचार करना। यह विराट् चेतना सब समय भारत को पूर्णतया अधिकार कर रखे। इस

राष्ट्रीयता के द्वारा ही हिन्दू तथा मुसलमान देश के प्रति एक गम्भीर प्रेम से एकत्र होंगे। इसका मतलब है—इतिहास तथा प्रचलित राजनीति को एक नयी दृष्टि से देखना; धर्म में रामकृष्ण-विवेकानन्द भाव का समावेश तथा सर्वधर्मसमन्वय। समझना होगा कि राजनैतिक स्मृति तथा अर्थनैतिक संकट मात्र गौण हैं, भारतवासी के द्वारा भारत की राष्ट्रीयता की उपलब्धि ही प्रकृत कार्य है।

● केवल जगत् के समक्ष भारत का परिचय प्रदान ही नहीं करना है, भारत की मर्मवाणी को भारतवासी को हृदयंगम कराना मूल कार्य है।

● हे भारत सन्तान ! तुम लोग अपने सारे प्राचीन महापुरुषों की पूजा करना सीखो। गहन ज्ञान का आह्वान करो। जो चिन्तन, जो भाषा तुमको प्राचीन की गम्भीरता में निहित अतुल सम्पदा का आविष्कार करने में सहायता प्रदान करेगी, वह तुम्हारे निकट ही है, विदेशियों के पास नहीं। इस प्रगाढ़ अनुसन्धित्सा, इस सत्य के उद्घाटन के ऊपर ही भारत का भविष्य निर्भर है। जो सत्य को केन्द्र बनाकर चलता है, उत्साह एवं उद्दीपना ही उसका अशेष पाथेय बनता है; निराशा उसे रोक नहीं सकती। आज प्रत्येक भारतीय भाषा में बृहत् साहित्य की रचना करनी होगी। इस साहित्य के माध्यम से प्राचीन को मुखर करना होगा; वर्तमान को रूप देना होगा तथा इन दोनों के समन्वय से ही भारत का उज्ज्वल चित्र प्रस्फुटित होगा।

● भारत की राष्ट्रीयता का स्वप्न भारत के लिए स्वार्थपरक नहीं हैं—यह है मानवता का स्वप्न, जहाँ भारतमाता विराट् आदर्श जननी है। जो कुछ भी महान, प्रेममय तथा सर्वव्यापी

हो, उसको हमारी मातृभूमि पालन तथा धारण करनेवाली होगी।

● इसका कोई विशेष महत्व नहीं है कि किसने, किस कर्मधारा का ग्रहण किया है। उन्हें हम लोग अवश्य ही राष्ट्रीय नेता का सम्मान प्रदान करेंगे, यदि वे यथार्थ कर्म द्वारा वास्तविक आत्मोत्सर्ग के द्वारा ऐकान्तिक देशभक्ति का परिचय दें। हे मेरे भारतीय जनगण, हे पददलित अज्ञ, असहाय जनगण! थोड़ा स्वर ऊँचा करो, ताकि तुम्हारा क्रन्दन सुना जाए, तुम्हारे सहज सुख को जान सकें तथा हम अपने हृदय को तुम्हारे साथ ही समवेत दुःख-कष्ट, समवेत प्रेम में सम्मिलित कर सकें।

सन्दर्भ

इस जीवन-चरित को लिखने में हमें दो पुस्तकों से सहायता मिली है : प्रव्राजिका आत्मप्राणा द्वारा लिखित *Sister Nivedita* तथा श्री शंकरीप्रसाद बसु द्वारा लिखित *लोकमाता निवेदिता*। अधिकतर उद्धरणों को इन्हीं दो पुस्तकों में से लिया गया है। इसके अतिरिक्त, हमें Letters of Sister Nivedita, निवेदिता पर दो भागोंवाले Centenary Memorial Souvenirs तथा सरलाबाला सरकार द्वारा लिखित *निवेदिताके जेमोन देखियाछि* से भी सहायता प्राप्त हुई है।

निवेदिता के सम्बन्ध में कुछ मनीषियों के विचार

○ भारतवर्ष के इस कार्य को अपने जीवन के कर्म के रूप में वरण करते हुए दूसरे यूरोपियों को भी देखा गया है, लेकिन उन्होंने अपने आपको सबों के ऊपर रखने की चेष्टा की है—श्रद्धापूर्वक दूसरों को दान नहीं दे सके—उनके दान में कहीं न कहीं हम लोगों के प्रति अनुग्रह का भाव विद्यमान है। ... किन्तु भगिनी निवेदिता ने अत्यन्त प्रेम एवं श्रद्धा के साथ अपने आपको भारतवर्ष को दान किया था। उन्होंने अपने आपको बिन्दुमात्र भी अपने पास नहीं रखा ... जनसाधारण के प्रति हृदय दान करना कितनी बड़ी सत्य वस्तु है, यह हम लोगों ने उनको देखकर ही सीखा है। ... माँ जिस तरह अपनी सन्तान को पूरी तरह जानती है, भगिनी निवेदिता भी जनसाधारण को उसी प्रकार प्रत्यक्ष सत्ता के रूप में अनुभव करतीं। वे इस विशाल भाव को एक विशेष व्यक्ति की तरह ही प्यार करतीं। अपने हृदय की सारी वेदना द्वारा उन्होंने इस जनसाधारण को आवृत्त कर रखा था। यह यदि एक शिशु होता तो इसको वे अपनी गोद में उठाकर अपना जीवन देकर मनुष्य बनातीं।

वस्तुतः वे लोकमाता थीं। जो मातृभाव परिवार की सीमा को लाँघकर सारे देश के ऊपर अपने आपको व्याप्त कर ले उसकी मूर्ति इससे पूर्व हमलोगों ने नहीं देखी। इस सम्बन्ध में पुरुषों का जो कर्तव्यबोध है, उसका कुछ-कुछ आभास हमें मिलता है, लेकिन रमणी का जो परिपूर्ण ममत्वबोध होता है, उसको हमने

प्रत्यक्ष नहीं किया। वे जब बोलतीं 'Our People' (मेरे लोग), तब उनके अन्दर एकान्त आत्मीयता जो स्वर बजता, वह स्वर हम लोगों के किसी के कण्ठ से तो निकलता नहीं।

—रवीन्द्रनाथ ठाकुर

○ निवेदिता ने अपने प्रत्येक कार्य, हरेक चिन्तन तथा अपने जीवन के प्रत्येक आवेग में भारत की आशा एवं आदर्श को अन्तर्भुक्त कर लिया था। ऐसा लगता है मानो प्राचीनकाल के किसी ऋषि की मुक्त आत्मा ने इनकी देह में पुनर्जन्म ग्रहण किया है, जिससे पाश्चात्य जीवनीशक्ति से बलीयान होकर अपनी पुरानी प्यारी परिचित भूमि पर लौटकर यहाँ वे जनगण की सेवा कर सकें। भारत का स्वप्न था निवेदिता का स्वप्न; भारत का चिन्तन निवेदिता के अन्दर प्रकाशित था। ... उनकी रचनावली के प्रत्येक अंश में भारतीय मन को ग्रहण एवं धारण करने की कैसी अपूर्व क्षमता थी ! ... भारत के प्रति प्रेम ने उन्हें भारत-सम्बन्धी अद्‌भुत अन्तर्दृष्टि प्रदान की थी।

—राष्ट्रगुरु सुरेन्द्रनाथ बद्योपाध्याय

○ निवेदिता भारतवर्ष को जिस प्रकार प्रेम करतीं, भारतवासियों ने भी उतना प्रेम कर पाया है या नहीं—इसमें सन्देह है।

—विपिनचन्द्र पाल

○ भारतवर्ष से जिन विदेशियों ने वास्तविक रूप में प्रेम किया है, उनमें निवेदिता का स्थान सर्वोपरि है।

—अवनीन्द्रनाथ ठाकुर

○ ऐसे निःस्वार्थ, स्वार्थपर-भावरहित प्रतिदान के सम्बन्ध में केवल सम्पूर्ण रूप से उदासीन ही नहीं, बल्कि पूर्णतया विरोधी, कार्य में तन्मय व्यक्ति को मैंने जीवन में देखा है—यह मैं नहीं जानता। उन्होंने निष्काम कर्म का जो आदर्श मुझे दिखाया है, उसे केवल गीता में पढ़ा था—उनके अन्दर इस भाव को पूर्णरूप में मैंने पाया था।

—दीनेशचन्द्र सेन

○ निवेदिता थीं मानवतावादी, सभी क्षेत्रों में कार्य करनेवाली—देशात्मबोधक कार्य, शिक्षा, राजनीति, राष्ट्रीयता, श्रमशिल्प, इतिहास, नैतिक संस्कार, समाज-कल्याण, नगर-उन्नयन एवं किसमें नहीं ! बंगाल के गौरवमय विप्लव-युग (१९०५-१०) में युवा बंगाली के निकट निवेदिता का नाम था जादूमन्त्र की तरह। कलकत्ता के तत्कालीन आन्दोलन के साथ युक्त छोटे-बड़े सभी मनुष्यों की वे सहयोगी थीं। विवेकानन्द और कुछ न कर केवल यदि निवेदिता को लाकर भारतीय कार्यावली के साथ युक्त कर देते तो भी उनका कर्मजीवन सफल एवं युग-सृष्टिकारी कहा जाता। भारत के लिए निवेदिता थीं—विवेकानन्द का अलौकिक आविष्कार।
निवेदिता थीं—भारत के जनगण की महान् सम्पदा।

—अध्यापक विनयकुमार सरकार
(तत्कालीन विख्यात समाजशास्त्री तथा विद्वान्)

○ निवेदिता की रचनाओं के द्वारा किसी भी तरह प्रभावित न हुआ हो, बंगाल के ऐसे किसी भी प्रयास का उल्लेख करना

कठिन है—वह चाहे साहित्य, शिल्प अथवा प्राचीन इतिहास सम्बन्धी गवेषणा आदि कुछ भी क्यों न हो !

—ओ. सी. गांगुली

(अर्धेन्दु गंगोपाध्याय, निवेदिता के समय में युवा शिल्पकार, परवर्तीकाल में शिल्पकार तथा शिल्प-विशेषज्ञ)

कालानुक्रम

१८२७, २८ अक्तूबर : उत्तर आयरलैण्ड के टायरोन प्रान्त के डन्गानान नामक एक छोटे-से उपनगर में जन्म।

१८७७ : पिता की मृत्यु। श्री सेम्युअल रिचमण्ड नोबल।

१८८४ : विश्वविद्यालय की अन्तिम परीक्षा सफलतापूर्वक उत्तीर्ण कर केसविक में अध्यापन कार्य शुरू किया।

१८९५, नवम्बर : स्वामी विवेकानन्द के साथ प्रथम भेंट।

२२ फरवरी : दक्षिणेश्वर में प्रथम आगमन तथा बेलुड़ मठ में रामकृष्ण जयन्ती में उपस्थित होना।

११ मार्च : स्टार थियेटर में प्रथम वक्तृता।

१७ मार्च : श्री माँ सारदादेवी के प्रथम दर्शन।

२५ मार्च : मार्गरेट नोबल को स्वामी विवेकानन्द के द्वारा ब्रह्मचर्य-दीक्षा प्राप्त हुई और निवेदिता नाम मिला।

११ मई : स्वामीजी तथा अन्य लोगों के साथ उत्तर-भारत भ्रमण।

२ अगस्त : स्वामीजी के साथ अमरनाथ की यात्रा।

१३ नवम्बर : श्री माँ सारदादेवी द्वारा १६ बोसपाड़ा लेन में निवेदिता स्कूल की स्थापना।

१८९९ : कलकत्ता में प्लेग महामारी का संकट। स्वामी विवेकानन्द की आज्ञा से निवेदिता ने मन-प्राण से इस महामारी से संघर्ष किया।

२० जून : स्वामीजी एवं कुछ अन्य लोगों के साथ पाश्चात्य देशों की यात्रा।

फरवरी १९०२ : भारत में वापसी।

२ जुलाई : निवेदिता की स्वामी विवेकानन्द से बेलुड़ मठ में अन्तिम भेंट।

४ जुलाई : स्वामीजी का महासमाधियोग में शरीर-त्याग

२१ सितम्बर : 'राष्ट्र निर्माण' के अपने उद्देश्य के तहत भारत भ्रमण करना तथा वक्तृता देना।

सितम्बर १९०३ : उनकी पुस्तक 'वेब ऑफ इण्डिन लाइफ' का प्रकाशन।

१९०४ : बोध गया की यात्रा।

१९०५ : बंगाल में स्वदेशी आन्दोलन शुरू हुआ। काशी काँग्रेस में भाग लेना।

१९०६ : 'गोपाल की माँ' का निधन, पूर्वी बंगाल में बाढ़ ग्रस्त इलाके का भ्रमण। 'ब्रेन फीवर' से आक्रान्त।

सितम्बर १९०७ : पश्चिम की पुनः यात्रा।

१९०९ जुलाई : भारत वापसी।

१ फरवरी, १९०९ : स्वामीजी पर उनकी पुस्तक, 'द मास्टर एस आई सॉ हिम' का प्रकाशन।

जून : जे. सी. बसु के परिवार के साथ केदार, बद्री तथा अन्य मन्दिरों की यात्रा।

१३ अक्तूबर, १९११ : दार्जिलिंग में अपनी इहलीला समाप्त की।

परिशिष्ट

निवेदिता के द्वारा लिखित कुछ महत्वपूर्ण पुस्तकें : The Web Of Indian Life, The Master As I Saw Him, Notes of Some Wanderings with the Swami Vivekananda, The Cradle Tales of Hinduism, Studies from an Eastern Home, Civil Ideal and Indian Nationality, Hints on National Education, Glimpses of Famine and Flood in the East Bengal-1906.

इसके अतिरिक्त, निवेदिता ने विभिन्न विषय जैसे धर्म, शिक्षा, अर्थशास्त्र, राजनीति, समाजशास्त्र, इतिहास, कला और साहित्य पर अनेक निबन्ध तथा लेख लिखे थे तथा बहुत-सी वक्तृताएँ दी थीं। अद्वैत आश्रम (५ डिही एण्टाली रोड, कोलकाता ७०० ०१४) ने Complete Works of Sister Nivedita पर ५ भागों का एक सेट छापा है जिनमें उनकी किताबों, निबन्धों एवं वक्तृताओं का संग्रह किया गया है। इनमें (मार्गरेट नोबल) के द्वारा भारत आने के पूर्व के लेखों का भी संग्रह किया गया है। उनके इस Complete Works में २,५०० पृष्ठ विद्यमान हैं, जिनमें उनके अनेक विचारोत्पादक एवं सारगर्भित पत्रों का संकलन भी किया गया है। इसके अलावा, करीब ८०० से भी अधिक पत्रों का संकलन कर नवभारत प्रकाशन ने Letters of Sister Nivedita (दो भागों में) नामक पुस्तक में संकलित किया है जिसे श्री शंकरीप्रसाद बसु ने सम्पादित किया है।

उनके जीवन-चरितों में : बंगला भाषा में प्रव्राजिका मुक्तिप्राणा द्वारा *भगिनी निवेदिता*, तथा प्रव्राजिका आत्मप्राणा द्वारा अंग्रेजी में *Sister Nivedita* उपलब्ध हैं। ये दोनों पुस्तकें सारदा मिशन से प्रकाशित हुई हैं एवं सारदा मिशन तथा रामकृष्ण मिशन के विभिन्न केन्द्रों में उपलब्ध

हैं। इसके अतिरिक्त, लन्दन की राइडर कम्पनी ने बारबारा फॉक्स द्वारा लिखित एक सुन्दर पुस्तक *"Long Journey Home"* प्रकाशित की है।

भगिनी निवेदिता के जीवन एवं कर्तृत्व पर अबतक की सबसे अच्छी पुस्तक बंगला भाषा में *'लोकमाता निवेदिता'* प्रकाशित हुई है जिसे श्री शंकरीप्रसाद बसु ने लिखी है। इन पुस्तकों के चार भाग हैं। प्रथम भाग के दो विभाग हैं, जो अपने में दो स्वतन्त्र भाग हैं। निवेदिता के विशद जीवन के विभिन्न पहलुओं को कोई समझ ही नहीं पाएगा यदि इन पुस्तकों न पढ़ा जाए।

लोकमाता निवेदिता के प्रथम भाग में : स्वामी विवेकानन्द से उनकी भेंट होने के पहले के जीवन का उल्लेख है जिसमें उनके भाई-बहनों के संस्मरण उपलब्ध हैं, मार्गरेट कैसे निवेदिता में परिवर्तित हुईं; परिवर्तन के पश्चात्, स्वामी विवेकानन्द तथा श्रीमाँ सारदादेवी के साथ उनका सम्बन्ध तथा रामकृष्ण-विवेकानन्द के अन्यान्य देशी-विदेशी गृही तथा संन्यासी भक्तों के साथ उनका मधुर सम्बन्ध, तथा जगदीशचन्द्र बसु के वैज्ञानिक अनुसन्धान के पार्श्व में उनके महत्वपूर्ण योगदान का लेखा-जोखा उपलब्ध है जिसके परिणास्वरूप बसु ने 'बसु विज्ञान मन्दिर' की प्रतिष्ठा की। दो विभागों में विभक्त, इस प्रथम भाग में ८०० पृष्ठ विद्यमान हैं।

लोकमाता निवेदिता के द्वितीय एवं तृतीय भागों में भारतीय सामाजिक एवं राजनैतिक परिपेक्ष्य का विस्तृत वर्णन उपलब्ध है एवं इसमें निवेदिता के महत्वपूर्ण योगदान का विशद वर्णन किया गया है। लेखक ने इन दो भागों में करीब ६२० पृष्ठ व्यय करके इस विषय का गम्भीर विवेचन किया है। इस पुस्तक के कुछ उप-शीर्षक हैं : भारत जागरण में निवेदिता का योगदान; निवेदिता की दृष्टि में राष्ट्रीयता का दर्शन; निवेदिता द्वारा तानाशाह लॉर्ड कर्ज़न का पर्दाफाश; स्वदेशी आन्दोलन; क्रान्तिकारी गतिविधियाँ एवं निवेदिता; निवेदिता-अरविन्द सम्बन्ध तथा निवेदिता एवं अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति और निवेदिता, तानाशाही, समाजवाद एवं स्वतन्त्रता संग्राम।

लोकमाता निवेदिता के चौथे भाग में निवेदिता और भारतीय कला-

आन्दोलन का उल्लेख है जिसमें २६० पृष्ठ व्यय किये गये हैं। अन्य कतिपय महत्वपूर्ण अध्यायों के नाम हैं : .स्वामीजी की भारतीय कला सम्बन्धी निवेदिता की शिक्षा; कला-सम्बन्धी निवेदिता का सिद्धान्त जिसे उन्होंने काली पर अपनी वक्तृता में व्यक्त की थी; कला-आन्दोलन में निवेदिता तथा ओकाकुरा तथा विवेकानन्द की प्रेरणा; निवेदिता और हैवेल; निवेदिता और अवनीन्द्रनाथ; निवेदिता और कुमारस्वामी; निवेदिता तथा नन्दलाल; तथा निवेदिता तथा कला आन्दोलन के प्रधान प्रणेता, श्री रामानन्द चट्टोपाध्याय।

इसके अतिरिक्त, निवेदिता की शतवार्षिकी जन्मोत्सव के उपलक्ष्य में श्री शंकरीप्रसाद बसु तथा सुनील बिहारी घोष इन सम्पादक द्वय द्वारा दो भागों की एक स्मरणिका प्रकाशित की गई। इस उपयोगी पुस्तक में विभिन्न निबन्धों, संस्मरणों तथा कविताओं का समावेश है जो अंग्रेजी एवं बंगला भाषा में लिखी गयी हैं। जो भी कि यह प्रकाशन आज उपलब्ध नहीं है, तो भी सारदा मिशन तथा रामकृष्ण मिशन के ग्रन्थालयों में ये उपलब्ध हैं।

निवेदिता व्रती संघ (W/2A(R)IC/4, phase IVB, Golf Green, Kolkata 700 095), ने निवेदिता के १२५ वें जन्मोत्सव के उपलक्ष्य में उनके ऊपर दो पुस्तकों का विमोचन किया जिनके नाम हैं—*शिखामयी निवेदिता* तथा *A Soldier with a flaming Sword.*

ऊपर लिखित पुस्तकों के अतिरिक्त निवेदिता पर अनेक छोटी-बड़ी पुस्तकें उपलब्ध हैं, जैसे *भारत चेतना और भारत वाणी*, जिनमें निवेदिता के महत्वपूर्ण लेखों का संकलन है। इनका प्रकाशन सारदा मिशन ने किया है।

दो पत्र*

६३ सेण्ट जार्जेस रोड, लन्दन
७ जून १८९६

प्रिय कुमारी नोबल,

मेरा आदर्श अवश्य ही थोड़े-से शब्दों में कहा जा सकता है, और वह है—मनुष्य-जाति को उसके दिव्य स्वरूप का उपदेश देना, तथा जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उसे प्रकट करने का उपाय बताना।

यह संसार कुसंस्कारों की बेड़ियों से जकड़ा हुआ है। जो अत्याचार से दबे हुए हैं, चाहे वे पुरुष हों या स्त्री, मैं उन पर दया करता हूँ, परन्तु अत्याचारियों पर मेरी दया अधिक है।

एक बात जो मैं सूर्य के प्रकाश की तरह स्पष्ट देखता हूँ वह यह कि अज्ञान ही दुःख का कारण है और कुछ नहीं। जगत् को प्रकाश कौन देगा? भूतकाल में बलिदान का नियम था, और दुःख है कि युगों तक ऐसा ही रहेगा। संसार के वीरों को और सर्वश्रेष्ठों को 'बहुजनाय, बहुजनसुखाय' अपना बलिदान करना होगा। असीम दया और प्रेम से परिपूर्ण सैकड़ों बुद्धों की आवश्यकता है।

संसार के धर्म प्राणहीन और तिरस्कृत हो गये हैं। जगत् को जिस वस्तु की आवश्यकता है वह है चरित्र। संसार को ऐसे लोग चाहिए जिनका जीवन स्वार्थहीन ज्वलन्त प्रेम का उदाहरण हो। वह प्रेम एक-एक शब्द को वज्र के समान प्रभावशाली बना देगा।

मेरी दृढ़ धारणा है कि तुममें कुसंस्कार नहीं है। तुममें वह शक्ति विद्यमान है जो संसार को हिला सकती है, धीरे-धीरे और भी अन्य लोग आयेंगे। 'वीर' शब्द और उससे अधिक 'वीर' कर्मों की हमें आवश्यकता है। महामना, उठो ! उठो ! संसार दुःख से जल रहा है। क्या आप सो सकती हैं? हम बार-बार पुकारें जब तक सोते हुए देवता न जाग उठें, जब तक अन्तर्यामी देव उस पुकार का उत्तर न दें। जीवन में और क्या है? इससे महान् कर्म क्या है? चलते-चलते मुझे भेदप्रभेद-सहित सब बातें ज्ञात हो जाती हैं। मैं उपाय कभी नहीं सोचता। कार्य-संकल्प का अभ्युदय स्वतः होता है और वह निज बल से ही पुष्ट होता है। मैं केवल कहता हूँ, जागो, जागो !

अनन्तकाल के लिए तुम्हें मेरा आशीर्वाद। इति।

सस्नेह तुम्हारा,
विवेकानन्द*

* (पत्रावली, रामकृष्ण मठ, नागपुर, १९९९, पृ. २८३-८४)

(२)

अल्मोड़ा २९ जुलाई १८९७

प्रिय कुमारी नोबल,

मैं तुम्हें स्पष्ट रूप से कहना चाहता हूँ कि मुझे विश्वास है कि भारत के काम में तुम्हारा भविष्य उज्ज्वल रूप धारण करेगा।

आवश्यकता है स्त्री की पुरुष की नहीं—सच्ची सिंहनी की जो भारतीयों के लिए, विशेषकर स्त्रियों के लिए काम करे।

भारत अभी तक भी महान् महिलाओं को उत्पन्न नहीं कर सकता, उसे दूसरे राष्ट्रों से उन्हें उधार लेना पड़ेगा। तुम्हारी शिक्षा, सच्चा भाव, पवित्रता, महान् प्रेम, दृढ़ निश्चय और सबसे अधिक तुम्हारे सेल्टिक (Celtic) रक्त ने तुमको वैसी ही नारी बनाया है जिसकी आवश्यकता है।

परन्तु कठिनाइयाँ भी बहुत हैं। यहाँ जो दुःख, कुसंस्कार और दासत्व है उसकी तुम कल्पना नहीं कर सकती। तुम्हें एक अर्धनग्न स्त्री-पुरुषों के समूह में रहना होगा जिनके जाति और पृथक्ता के विचित्र विचार हैं, जो भय और द्वेष से सफेद चमड़े से दूर रहना चाहते हैं और सफेद चमड़ेवाले जिनसे स्वयं अत्यन्त घृणा करते हैं। दूसरी ओर श्वेत जाति के लोग तुम्हें सनकी समझेंगे और तुम्हारे आचार-व्यवहार को वे सशंकित दृष्टि से देखते रहेंगे।

फिर यहाँ भयंकर गर्मी पड़ती है; अधिकांश स्थानों में हमारा शीतकाल तुम्हारी गर्मी के समान होता है और दक्षिण में हमेशा आग बरसती रहती है।

नगरों के विलायती आराम की कोई सामग्री नहीं मिल सकती। ये सब बातें होते हुए भी यदि तुम काम करने का साहस करोगी तो हम तुम्हारा स्वागत करेंगे, सौ बार स्वागत करेंगे। मेरे विषय में यह बात है कि जैसे अन्य स्थानों में वैसे ही मैं यहाँ भी कुछ नहीं हूँ, फिर भी जो कुछ मेरी सामर्थ्य होगी वह तुम्हारी सेवा में लगा दूँगा।

इस कार्यक्षेत्र में प्रवेश करने से पहले तुमको अच्छी तरह विचार कर लेना चाहिए, और यदि काम करने के बाद तुम

असफल हो जाओगी अथवा अप्रसन्न हो जाओगी तो मैं अपनी ओर से तुमसे प्रतिज्ञा करता हूँ कि चाहे तुम भारत के लिए काम करो या न करो, तुम वेदान्त को त्याग दो या उसमें स्थित रहो, *मैं मृत्यु-पर्यन्त तुम्हारे साथ हूँ।* "हाथी के दाँत बाहर निकलते हैं परन्तु अन्दर नहीं जाते।"—इसी तरह मनुष्य के वचन वापस नहीं फिर सकते। यह मैं तुमसे प्रतिज्ञा करता हूँ। फिर से मैं तुमको सावधान करता हूँ। तुमको अपने पैरों पर खड़ा होना चाहिए, और कुमारी मूलर आदि के आश्रित न रहना चाहिए। अपने ढंग की वह एक विशिष्ट महिला है, परन्तु दुर्भाग्यवश जब वह बालिका ही थी, तभी से उसके मन में यह बात समायी है कि वह जन्म से ही एक नेता है और संसार को हिलाने के लिए धन के अतिरिक्त किसी गुण की आवश्यकता नहीं है ! ...

श्रीमती सेवियर नारियों में रत्न हैं, ऐसी गुणवती और दयालु। केवल सेवियर दम्पति ऐसे अंग्रेज हैं जो भारतवासियों से घृणा नहीं करते, स्टर्डी की भी गिनती इनमें नहीं है। श्रीमान् और श्रीमती सेव्हियर दो ही व्यक्ति हैं जो अभिमानपूर्वक हमें उत्साह दिलाने नहीं आये थे, परन्तु उनका अभी कोई निश्चित कार्यक्रम नहीं है। जब तुम आओ तब तुम उन्हें अपने साथ काम में लगाओ। इससे तुमको भी सहायता मिलेगी और उन्हें भी। परन्तु अन्त में अपने पैरों पर ही खड़ा होना परमावश्यक है। ...

भगवत्पादाश्रित,

विवेकानन्द*

* (नोट : पत्रावली, रामकृष्ण मठ, नागपुर, १९९९ पृ. ३७०-७१-७२)

भगिनी निवेदिता के लिए स्वामी विवेकानन्द का यह निर्देश था : 'भविष्य की भारत-सन्तानों के लिए तुम एकाधार में जननी, सेविका और सखा बन जाओ।' अपने गुरुदेव के इस निर्देश का उन्होंने अक्षरश: पालन किया था। भारत की लज्जा और गर्व निवेदिता की व्यक्तिगत लज्जा और गर्व बन गये थे। किसी भी विदेशिनी महिला ने भारत के धर्म, संस्कृति, दु:ख और स्वप्न को निवेदिता की तरह अपना समझकर ग्रहण नहीं किया था। किसी भी विदेशिनी ने भारत के जनसाधारण के प्राणों की आशा-आकांक्षाओं, भारत की अन्तरात्मा के सत्यस्वरूप को इतनी सूक्ष्मता से समझा न था। दरअसल, भारत के प्रति उनका आत्मनिवेदन इतना आन्तरिक, सर्वांगीण और परिपूर्ण था कि उनको विदेशिनी कहना ही मानो उनका अपमान करना था। उन्होंने कभी 'भारत की आवश्यकता', 'भारतीय नारी' जैसे शब्दों का उच्चारण नहीं किया, वे कहतीं 'हमारी आवश्यकता', 'हमारी नारी'। भारतवर्ष की बात करते ही वे भाव विभोर हो जाया करतीं। जपमाला लेकर वे भावस्थ हो जपतीं 'भारतवर्ष, भारतवर्ष, भारतवर्ष! माँ, माँ, माँ!' भारत के प्रति निवेदिता की सेवा का स्मरणकर हम यह विनम्र भेंट प्रस्तुत कर रहे हैं जिसका नाम *'भारत की निवेदिता'* उचित ही रखा गया है। सचमुच, श्रीमाँ सारदा देवी भी ऐसा ही समझती थीं। वे कहतीं: 'निवेदिता यहाँ की ही है। केवल उनके (श्रीरामकृष्ण के) भाव एवं सन्देश को प्रचारित करने हेतु उस देश (पाश्चात्य) में जन्म लिया था।'

Rs. 5.00

ISBN 81-87332-28-X